ಕರ್ನಾಟಕ ರಾಜ್ಯ ಮುಕ್ತ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾನಿಲಯ
ಮಾನಸಗಂಗೋತ್ರಿ, ಮೈಸೂರು – 570 006.

Karnataka State Open University
Manasagangothri, Mysore - 570 006.

आधुनिक हिन्दी काव्य

M. A. Previous HINDI
Course / Paper - II

नया सप्तक

Blook-8

ಉನ್ನತ ಶಿಕ್ಷಣಕ್ಕಾಗಿ ಇರುವ ಅವಕಾಶಗಳನ್ನು ಹೆಚ್ಚಿಸುವುದಕ್ಕೆ ಮತ್ತು ಶಿಕ್ಷಣವನ್ನು ಪ್ರಜಾತಂತ್ರೀಕರಿಸುವುದಕ್ಕೆ ಮುಕ್ತ ವಿಶ್ವವಿದ್ಯಾನಿಲಯ ವ್ಯವಸ್ಥೆಯನ್ನು ಆರಂಭಿಸಲಾಗಿದೆ.

ರಾಷ್ಟ್ರೀಯ ಶಿಕ್ಷಣ ನೀತಿ 1986

The Open University system has been initiated in order to augment opportunities for higher education and as an instrument of democratising education.

National Education Policy 1986

हिन्दी एम .ए . प्रीवियस - द्वितीय पत्र

KSOU
MGM 06

Hindi
Paper / Course - II

ब्लाक सं

8

" आधुनिक हिन्दी काव्य "

Unit No. 29 to 33
अनुक्रमणिका : - **Page No.**

इकाई 29 नयी कविता : सामाजिक पृष्ठभूमि 1 - 36

इकाई 30 हिन्दी नयी कविता की विकास यात्रा 37 - 64

इकाई 31 प्रयोगवाद और नयी कविता 65 - 84

इकाई 32 अज्ञेय और मुक्तिबोध की कविताओं का विश्लेषण 85 - 120

इकाई 33 डॉ धर्मवीर भारती, गिरिजा कुमार माथुर और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के काव्य का विवेचन 121 - 136

M.A HINDI COUR -2 BLOCK-8 ENG -1 FRONT

पाठ्यक्रम अभिकल्प तथा संपादकीय समिति

प्रो.एम.जी.कृष्णन
उप कुलपति तथा अध्यक्ष.
क. रा. मु. वि. विद्यालय,
मैसूर - 6

प्रो.एस.एन.विक्रमराज अरस
डीन (शैक्षणिक) संयोजक
क. रा. मु. वि. विद्यालय
मैसूर 6

संपादक

डॉ. शशिधर. एल. जी
रीडर, हिन्दी विभाग,
मैसूर विश्वविद्यालय,
मानस गंगोत्री
मैसूर - 6

सयो जेक

डॉ.कांबले अशोक
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
क. रा. मु. वि. विद्यालय
मैसूर - 6

पाठ्यक्रम की लेखिका ब्लाक

डॉ. विमला. एम.
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
बेंगलूर विश्व विद्यालय
बेंगलूर

इकाई 29

कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय, मैसूर शैक्षणिक अनुभाग द्वारा निर्मित।
सभी अधिकार सुरक्षित। कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय से लिखित अनुमति प्राप्त किए बिना, इस कार्य के किसी भी अंश को किस... अनुलिपित किसी अन्य माध्यम द्वारा प्रतिकृति नहीं किया जाएगा।
कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम पर अधिक जानकारी विश्व... के कार्यालय, मानस गंगोत्री, मैसूर - 6 से प्राप्त की जा सकती है
कर्नाटक राज्य मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से रजिस्ट्रार (प्रशासन) द्वारा मुद्रित व प्रकाशित।

ब्लाक परिचय

प्रिय विद्यार्थि - बन्धु ,

ब्लाक चार के अंतर्गत आपने इकाइ 23 में ' तुलसीदास की जीवनी, व्यक्तित्व और कृतित्व, ' इकाई 24 में ' निराला के काव्य की प्रवृत्तियाँ ' इकाई 25 में ' निराला और तुलसीदास ' इकाई 26 में ' तुलसीदास एक विवेचन ' इकाइ 27 में ' तुलसीदास एक सर्वेक्षण, तथा इकाई 28 में ' तुलसीदास- छायावादी परिप्रेक्ष एवं युग चेतना ' के संबंध में अध्ययन किया है।

प्रस्तुत ब्लाक के अंतर्गत इकाइ 29 में ' नयी कविता : सामाजिक पृष्ठभूमि ' इकाई 30 में ' हिन्दी नयी कविता की विकास यात्रा ' इकाई 31 में ' प्रयोगवाद और नयी कविता ' इकाइ 32 में ' अज्ञेय और मुक्तिबोध की कविताओं का विश्लेषण, ' तथा इकाई 33 में ' डॉ. धर्मवीर भारती,गिरिजा कुमार माथुर और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के काव्य का विवेचन ' संबंधी विषय का अध्ययन करेंगे।

डॉ.कांबले अशोक
अध्यक्ष ,
हिन्दी अध्ययन एवं अनुसंधान विभाग
क. रा. मु. वि. विद्यालय,
मैसूर - 6

M A HINDI COUR -2 BLOCK-8 FNO.-1 BACK

तण्ड

इकाई 29
नयी कविता : सामाजिक पृष्ठभूमि

इकाई की रूप रेखा

29.0 उद्देश्य

29.1 प्रस्तावना

29.2 नयी कविता की पृष्ठभूमी

- 29.2.1 औद्योगीकरण व नया समाज
- 29.2.2 शहरी समाज का निर्माण
- 29.2.3 नारी - मुक्ति आन्दोलन
- 29.2.4 प्राचीन भारत में समाज

29.3 काव्य को प्रभावित करनेवाले पाश्चात्य दर्शन

- 29.3.1 मनोविश्लेषणवाद
- 29.3.2 मार्क्स का साहित्य - चिन्तन
- 29.3.3 अस्तित्ववाद
- 29.3.4 अतियथार्थवाद व कला
- 29.3.5 प्रतीकवाद
- 29.3.6 बिम्बवाद और काव्य
- 29.3.7 स्वच्छन्दतावाद तथा यथार्थवाद

29.4 निष्कर्ष

29.5 बोध प्रश्न

29.6 नमूने का उत्तर

29.7 सहायक पुस्तकें

29.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में नयी कविता की सामाजिक पृष्ठभूमि का विवेचन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने का बाद आप -

- हिन्दी नयी कविता पर हुए औद्योगित सभ्यता के प्रभाव को समझ सकेंगे।
- नारि मुक्ति आंदोलन के योगदान को पहचान सकेंगे।
- भारतीय समाज पर हुए पाश्चात्य मान्यताओं और जीवन मूल्यों के प्रभाव को जान सकेंगे।
- मनो विष्लेषण वाद और मार्क्सवाद की विचारधारा से अवगत हो जाएँगे।
- अस्तित्ववाद एवं अतीयताथवाद के चिंतन को समझ सकेंगे।

29.1 प्रस्तावना

नयी कविता सामाजिक जमीन से उगी कविता है । इसका तात्पर्य यह नहीं कि अन्य युगों की कविता समाजनिरपेक्ष रही है, बल्कि केवल यह कि नयी कविता दूसरे युगों की कविता की अपेक्षा समाज को गहरी नजर से देखने की कोशिश करती है । उसका सामाजिक अवस्थितियों से सीधा सम्बन्ध है । संवेदना के स्तर पर उसका समाज से गहरा लगाव है । यह समाज के सुख - दुःख की बरा - बर की भागीदार है । समाज में घटने वाले अत्याधुनिक परिवर्तनों और परम्परागत मूल्यों के बीच उत्पन्न संघर्ष को, नयी और पुरानी पीढ़ी के बीच पैदा होने वाले मानसिक खिंचाव को, नव्य और बूर्जुआ संस्कृति की टकराहट से निकली आवाज को और व्यक्ति तथा समाज के सम्बन्धों के कसैले तनाव को नयी कविता ने अभिव्यक्ति दी है इसीलिए यह आवश्यक है कि उस सामाजिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण किया जाए, जो नयी कविता की ज़मीन बनी।

29.2 नयी कविता की पृष्ठभूमी

29.2.1 औद्योगीकरण व नया समाज - अठारहवीं शताब्दी में इंग्लैंड की औद्योगिक क्रान्ति में एक नई सामाजिक - सभ्यता का जन्म हुआ, जिसे औद्योगिक - सभ्यता कहा गया । इसकी सबसे बड़ी विशेषता थी - उत्पादन में मशीनों का आधिपत्य । 1764 ई. में जेम्सवाट द्वारा स्टीम इन्जिन का आविष्कार, 1764 में ही जेम्स हारग्रीव द्वारा सूत कातने वाले चर्खे का निर्माण, 1814 में जार्ज स्टीवेन्सन द्वारा रेलगाड़ी का प्रयोग, 1832 में सेमुअल मोर्स द्वारा टेलीग्राफ का आविष्कार, 1876 में ग्राहम वेल द्वारा टेलीफोन और 1896

में जी. मारकोनी द्वारा रेडियो का निर्माण तथा 1895 में रुडोल्फ डीजल द्वारा डीजल इंजिन का निर्माण औद्योगीकरण के विकास में सहायक सिद्ध हुए । ... मूल्यों में बदलाव आया । औद्योगीकरण में पूँजीपति और श्रमिक दो वर्ग पैदा हुए । कल कारखाने पूँजीपतियों के हाथ में चले गए और श्रमिक उनमें उत्पादन कार्य करने लगे । पूँजीपति अपनी चालों से धन - संचय करने लगे । उन्होंने इसके लिए शोषण को शस्त्र बनाया और इसके शिकार बने श्रमिक । श्रमिक लाख कोशिशें करने के बाद भी अपने श्रम का उचित मूल्य पाने में असफल ही रहे । अतः उनमें असन्तोष पनपा । शनैः - शनैः श्रमिक शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाने लगे और ट्रेड यूनियनों का निर्माण हुआ । यहीं से पूँजीपति और श्रमिकों के बीच सीधा संघर्ष प्रारम्भ हुआ । इस संघर्ष को मार्क्स, एंजिल्स आदि ने दार्शनिक व्याख्या देकर परिपुष्ट किया । वर्गचेतना के साथ अधिकारों के लिए संघर्ष उत्तरोत्तर बढ़ता चला गया।

औद्योगीकरण ने सामाजिक ढाँचे को आमूल बदल डाला । व्यापारिक प्रतिष्ठानों में कार्य करने के लिए गाँवों से शहरों की ओर भागने की होड़ लग गई, जिससे संयुक्त परिवार - व्यवस्था विघटित हुई । शहरों की ओर भागने की प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप ही पारम्परिक यौन जीवन में अव्यवस्था पनपने लगी । क्योंकि पहले संयुक्त परिवार में अनुशासन की कठोरता के कारण काम- जीवन मर्यादित रहता था । शहरीकरण में विभिन्न स्थानों और भिन्न संस्कृतियों को मानने वाले एक स्थान पर एकत्र हुए । इनमें घनिष्ठता और रागात्मकता का अभाव था ... फिर स्थान की संकुलता से पारस्परिक लज्जा रिवाज में ढल गई । फलत... अपरिचित दायरा बढ़ता चला गया, जिसमें से विश्रृंखलता और ... पनपीं । अन्ततः यौन - जीवन अनियन्त्रित हो गया । बाद में इस ... स्वातन्त्र्यता ने 'फ्री सैक्स' आन्दोलन को जन्म दिया।

औद्योगीकरण ने जहाँ एक ओर सामाजिक विखण्डन को जन्म दिया, वहीं उसने विभिन्न सस्कृतियों के मध्य प्रगाढ़ परिचय का मार्ग प्रशस्त किया। इससे एक '... मानवीय संस्कृति' का विकास हुआ । उद्योगों में कार्य करने के लि... और विविध संस्कृतियों के लोग एक स्थान पर एकत्र ... धर्मो सस्कृतियों और सभ्यताओं ने एक - दूसरे को बहुत ... परिणाम यह हुआ कि सांस्कृतिक अज्ञानता और अजनबीपन

की स्थिति समाप्त हुई तथा एक ऐसी संस्कृति का विकास हुआ जिसमें रुढ़ियों, सामाजिक - धार्मिक दुराग्रहों और बँधे - बँधाए जीवन - मूल्यों के लिए कोई स्थान नहीं था।

औद्योगीकरण की इन समस्त दशाओं ने नयी कविता को प्रभावित किया । औद्योगिक युग के तनाव, असन्तोष, नये सत्यों की खोज की व्यग्रता और यान्त्रिकता ने नयी कविता को गति प्रदान की ।

29.2.2 शहरी समाज का निर्माण - यदि औद्योगिक सभ्यता का एतिहासिक विश्लेषण किया जाए तो यह निष्कर्ष निकलता है कि शहरी सभ्यता औद्योगिक सभ्यता का प्रमुख परिणाम है । प्राचीनकाल में कृषि - सभ्यता के अन्तर्गत अधिकांश जनसंख्या प्रत्यक्ष रूप से तथा शेष परोक्ष रूप से कृषि पर आधारित थी । उस समय संयुक्त परिवार - व्यवस्था समाज का मूल तत्त्व थी । जनसंख्या कम होने के कारण तथा मशीनों के अभाव में व्यक्ति गाँवों में परम्परागत संस्कृति का पालन करते हुए रहते थे । धीरे - धीरे बढ़ी, जिसे वहन करना कृषि की सामर्थ्य से बाहर हो गया । इसी समय औद्योगीकरण प्रारम्भ हुआ । देखते ही देखते गाँवों से उद्योगों में काम पाने हेतु दौड़ प्रारम्भ हो गई। यहीं से नगरीयकरण की प्रक्रिया तीव्र होने लगी ।

इस प्रकार आर्थिक कीली पर घूमते हुए जिस शहरी समाज का निर्माण हुआ उसमें अनेक वैयक्तिक व सामुदायिक समस्याएँ उत्पन्न हो गई । संयुक्त परिवार के स्थान पर वैयक्तिक परिवार - व्यवस्था, व्यक्ति - व्यक्ति के बीच संकुचित सम्बन्ध और परायापन, सम्बन्धों की रागात्मकता की शिथिलता, जीवनयापन का खर्चीला होना, व्यक्तियों के स्थान पर मशीनों की स्थापना के कारण बेरोज़गारी की समस्या जनसंख्या की अधिकता और आवास - सुविधा की कमी के कारण नैतिक अपराधों में वृद्धि तथा अस्वास्थ्यकर वातावरण की सृष्टि, मानसिक रोगों की बढ़ोत्तरी, प्रकृति से अलगाव, जीवन के प्रति अविश्वास, आत्महत्या के वातावरण का फैलाव, अति व्यस्त जीवन के कारण बच्चों के प्रति उदासीनता और इस प्रकार समाजव्यापी दिग्भ्रम की स्थिति उत्पन्न होना आदि अनेक समस्याएँ हैं, जो केवल शहरीकरण के कारण उत्पन्न हुई हैं और जिन्होंने आज के सम्पूर्ण सामाजिक जीवन को दूषित कर दिया है । यही कारण है कि शहरीकरण के सन्दर्भ में समाज - वैज्ञानिकों द्वारा यह

कहा जाता है कि शहर एक ओर मनुष्य की सभ्यता के सूचक हैं तो दूसरी ओर उसके विनाश के । प्रसिद्ध समाजशास्त्री - लुई ममफर्ड ने अपनी पुस्तक 'द कल्चर आँव द सिटीज़' में शहरीकरण के निम्नांकित रूप दिए हैं -

1. आदि नगर,
2. नगर,
3. मुख्य नगर,
4. विशाल नगर,
5. आक्रान्त नगर,
6. मृत्यु नगर ।

इस प्रकार आर्थिक विकास की ओर बढ़ती हुई भी शहरीकरण की प्रक्रिया विनाशवाहिनी ही सिद्ध हुई । इस परिवर्तन की यह कितनी बड़ी सांस्कृतिक विडम्बना है कि गाँव और नगर एकदम विरोधी धरातल पर स्थित हो गए ।

ध्यान देने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह जो विशिष्ट सामाजिक निर्मिति हुई जिसके अन्तर्गत सारा विश्व भौगोलिक ही नहीं सूक्ष्म मानसिकस्तर पर भी आश्चर्यजनक रूप से एक - दूसरे से सम्बद्ध हुआ, इसका मुख्य कारण विज्ञान रहा । विज्ञान ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक ओर अधिनायकत्व और दूसरी ओर मानव - मूल्यों में विघटन की प्रक्रिया को जन्म दिया ।

29.2.3 नारी - मुक्ति आन्दोलन - जब तक समाज के किसी भी भाग में परतन्त्रता है तब तक प्रगति अधूरी है। वस्तुतः इस आन्दोलन के मूल में यही भावना है ।

29.2.4 प्राचीन भारत में समाज - रूपी रथ के दो पहिये थे - पुरुष व स्त्री। दोनों का ही समान महत्व और दायित्व था । यही कारण है कि वेदकालीन नारी स्वाभिमानपूर्वक अपने को सबला घोषित करती हुई दिखाई देती है -

अवीरामिव माम्यं शरारुरभि मन्यते ।
उलहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥
(ऋ. 10/86/9)

(अर्थात् यह घातक आक्रान्ता मुझे अबला की भाँति मानता है । मैं अबला नहीं वीरांगना हूँ, मैं वीर की पत्नी, मृत्यु से न डरने वाले, प्राणों को हथेली पर रखने वाले वीर सैनिकों की मैं मित्र हूँ । विश्व में श्रेष्ठ, ऐश्वर्यशाली इन्द्र मेरा पति है ।)

दुर्भाग्य से किन्हीं सांस्कृतिक दुरभिसन्धियों के कारण स्त्रियों की स्थिति महत्त्वहीन होती गई और एक समय की अपाला, गार्गी, देवयानी, लोपामुद्रा, आप्ना घोषा, जुहू, यामी, इन्द्राणी आदि ऊर्जस्वी महाशक्तियों को दासी बनाकर चहारदीवारी में बन्द कर दिया गया । दीर्घकाल तक पुरुष - प्रधान समाज में नारी को वास्तविक सम्मान का स्थान नहीं मिल सका । रुढ़िवादी समाज और सामन्ती परिवेश में उसकी स्थिति और भी दयनीय और विषम हो गई ।

आधुनिक युग में पुनर्जागरण के साथ - साथ नारी - मुक्ति का स्वर दो स्तरों पर उभरकर सामने आया -

अ) सामाजिक संस्थाओं द्वारा ।

ब) राजनीतिक संस्थाओं द्वारा ।

सामाजिक - सांस्कृतिक सुधारवादी आन्दोलनों में आर्य - समाज, ब्रह्म - समाज, थियोसोफिकल सोसायटी, आर्य महिला समाज, इण्डियन वीमैन्स एशोसियेशन आदि का नाम उल्लेखनीय है । इन संगठनों ने स्त्रियों को सामाजिक सम्मान दिलाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया ।

राजनीतिक दृष्टि से स्त्रियों में जागृति लाने और उन्हें राष्ट्रीय समस्याओं से पुरुषों के समान ही जूझने का अधिकार दिलाने की दिशा में आयरिश महिला एनीबेसेंट, मारग्रेट नोबुल और मारग्रेट कजन ने सन् 1914 के आसपास प्रशंसनीय कार्य किया । 1917 में एनीबेसेन्ट भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की प्रथम महिला अध्यक्ष चुनी गई । इसी वर्ष भारत कोकिला सरोजिनी नायडू द्वारा अनेक महिला प्रतिनिधियों के साथ ब्रिटिश सरकार को स्मरण - पत्र दिया गया और 1929 ई. में स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त हो गया । नारी - जागरण का ही यह परिणाम हुआ कि 1930 में होने वाली 'गोलमेज कान्फ्रेंस' में सरोजोनी नायडू, जहाँनारा साहनवाज़ तथा राधाबाई सुब्बारायन को आमन्त्रित किया गया । राजनीतिक चेतना के इसी क्रम में सन् 1940 के चुनाव में 80 महिला

विधायक चुनकर आई और यह स्पष्ट हो गया कि राष्ट्रीय विकास में स्त्रियों की भूमिका को न तो नकारा जा सकता है और न उनकी उपेक्षा ही की जा सकती है ।

पश्चिमी जगत में जो नारी - मुक्ति आन्दोलन चला, उसके विषय में यह जानना अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि वहाँ, 'स्त्री - पुरुष के सम्बन्धों' को, इस आन्दोलन का मुख्य मुद्दा माना गया । वहाँ शारीरिक स्वतन्त्रता (जिसे वैयक्तिक स्वतन्त्रता कहा गया) में ही राजनीतिक, सामाजिक आदि स्वतंन्त्रताओं को जोड़ दिया गया और यह कहा गया कि यदि पुरुष वैयक्तिक धरातल पर स्त्री को शासित समझना छोड़ दे तो प्रत्येक क्षेत्र में अवसर की समानता स्वयं ही प्राप्त हो जाएगी । पाश्चात्य जगत् में जो नारी - मुक्ति आन्दोलन चला उसके मुख्य नारे थे - 'हमारी माँग समानता' , 'हम घर से निकलकर संसार में आए हैं', 'हम लैगिक भेद के विरुद्ध हैं' , 'मुक्ति चाहिए बन्धन नहीं' , 'हम जानकारी और अपने शरीर पर नियन्त्रण की माँग करते हैं' , 'हमारे सौन्दर्य को विज्ञापन न बनाया जाए' ,आदि । पश्चिम के नारी - मुक्ति आन्दोलन को गति प्रदान करने में अमेरिकी नारी - मुक्ति की प्रमुख 'केट मिलेट' द्वारा लिखित 'सैक्सुअल पालिटिक्स' ,जर्मन ग्रीअर द्वारा लिखित 'द फीमेल युनक' तथा फ्रांसीसी उपन्यासकार सिमन द बउआ तथा नाथाली सर्रात की औपन्यासिक कृतियों का महत्त्वपूर्ण योगदान है । इनके प्रभाव से ही यौन सम्बन्धों में पुरुषों की अपेक्षा, समलैगिक विवाह, स्वच्छन्द काम सम्बन्ध और एण्टी ब्रा मूवमैन्ट जैसी भावनाएँ खुलकर सामने आई । इस प्रकार आधुनिक युग में नारी - मुक्ति आन्दोलन ने सर्वथा नयी सामाजिक - सांस्कृतिक मान्यताओं की स्थापना की । इसके प्रभावों को इस प्रकार अंकित किया जा सकता है -

1. नारी - जागरण और नारी - मुक्ति - आन्दोलन के परिणामस्वरूप समाज में नारियों की द्वितीयक स्थिति समाप्त हुई ।

2. भारतवर्ष सहित विश्व के सभी प्रमुख देशों में नारियों के अधिकारों के पक्ष में वातावरण बना और बौद्धिक वर्ग ने इस सन्दर्भ में व्यावहारिक रूप से सोचना प्रारम्भ किया ।

3. नारी - जागरण आन्दोलन के फलस्वरूप विवाह कठोर सामाजिक बन्धनों से होकर दो व्यक्तियों का पारस्परिक समझौता हो गया । इससे पुरुष व स्त्री समान धरातल पर स्थापित हुए ।

4. इस जागरण के परिणामस्वरूप ही स्त्रियों की बौद्धिक बौनेपन और सामाजिक निष्क्रियता की समस्या हल हुई । पहले स्त्री का संसार केवल घर था, प्रतियोगिता और संघर्ष का सामना उसे नहीं करना पड़ता था, अतः उसकी प्रतिभा ' कुंठित हो जाती थी । किन्तु जब से उसे जीवन - संघर्ष में सक्रिय भूमिका निभाने का अवसर मिला, तब से उसकी प्रगति का मार्ग खुल गया और सामाजिक प्रगति की गति बढ़ी।

5. नारी जागरण - आन्दोलत के दौरान स्त्रियों की नैतिक पवित्रता का प्रश्न काफी उठाया गया । अनेक बहसें आयोजित कीं और अन्ततः यह निष्कर्ष निकला कि "यौन - योग मात्र औरत को नैतिक - अशुद्धि नहीं देता । वरना पति के सम्पर्क के बाद भी औरत पतिता गिनी जानी चाहिए थी ।"

6. डॉ. राममनोहर लोहिया जैसे प्रखर राजनीतिक - सामाजिक विचारकों में सौन्दर्य के प्रश्न को भी उठाया और यह सिद्ध किया कि गौर वर्ण को सुन्दरता का मापदण्ड नहीं माना जाना चाहिए अन्यथा स्त्री - समाज का अधिकांश भाग हीनभावना से ग्रस्त हो जाएगा । डॉ. लोहिया ने श्यामवर्ण को सौन्दर्य का आधार मानने पर बल दिया ।

नयी कविता ने इस आन्दोलन से एकाधिक प्रवृत्तियाँ ग्रहण की हैं । स्त्री - पुरुष के सम्बन्धों के तनाव का यथार्थ चित्रण, नैतिकता के सम्बन्ध में पनपती हुई नितान्त नयी मान्यताओं का चित्रण, मुक्त भोग का अंकन, स्त्री - पुरुष के बीच समानता की भावना का समर्थन, स्त्री - पुरुष के बीच प्रतियोगिता और उसके फलस्वरूप पैदा होने वाली गतिशीलता का अंकन आदि बातें नयी कविता में मिलती हैं ।

आवागमन के साधनों का प्रभाव - आधुनिक समाज के निर्माण में आवागमन के साधनों के विकास का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है । जैसे - जैसे आवागमन व संचार के साधनों का विकास होता गया, एक राष्ट्रीय संस्कृति के निर्माण की संभावनाएँ बढ़ती चली गई । इसका प्रथम शक्तिशाली परिचय प्रथम स्वतन्त्रता - संग्राम और उसके बाद के राष्ट्रीय आन्दोलन में मिला, जब विदेशी सत्ता के विरुद्ध पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक सारा देश एक साथ उठकर खड़ा हो गया ।

भारतीय समाज पर पाश्चात्य मान्यताओं और जीवन मूल्यों का प्रभाव भी आवागमन व संचार के साधनों के विकास से ही हुआ । इस सुविधा के उपलब्ध होने पर अनेक भारतीय शिक्षा प्राप्त करने बाहर के देशों में गए और पाश्चात्य दर्शन से ओत - प्रोत होकर लौटे । साथ ही दूसरे देशों के व्यक्ति धर्मप्रचारक, व्यापारी आदि के रूप में इस देश में आए । इससे भारतीय समाज को पाश्चात्य संस्कृति का परिचय मिला । पश्चिम के समाज की मान्यताओं के प्रभाव के कारण भारतीय समाज की जातिगत, धार्मिक और साम्प्रदायिक रुढ़ियाँ टूटीं तथा नये समाज का विकास हुआ ।

मात्र सामाजिक व धार्मिक क्षेत्र में ही नहीं, साहित्यिक क्षेत्र में भी एक देश के साहित्य का परिचय दूसरे देश के साहित्य से आवागमन व संचार के साधनों के विकास द्वारा ही सम्भव हो सका है । स्वच्छन्दतावाद, यथार्थवाद, अस्तित्ववाद, बिम्बवाद, प्रतीकवाद आदि अनेक काव्यरूपों का पालन - पोषण पश्चिमी साहित्य में हुआ और उन्होंने बाद में भारतीय साहित्य, विशेषतः नयी कविता को प्रभावित किया । नयी कविता ऐसे मानव का चित्रण करती है, जिसका स्वरूप क्षेत्रीय नहीं अन्तर्राष्ट्रीय है, जो विश्व - समस्याओं से जूझ रहा है, जिसके जीवन पर व्यापक परिवेश प्रभाव डाल रहा है और जो विश्व - सभ्यता का गठन करने में जुटा है ।

विज्ञान - विश्वयुद्ध और मानव मूल्य - विज्ञान ने पूरी मानव - सभ्यता को सामन्ती - व्यवस्था से निकालकर पूँजीवादी - व्यवस्था के क्षेत्र में ला खड़ा किया । प्राकृतिक - स्रोतों के दोहन की सुविधा प्राप्त करके मनुष्य ने अपनी आर्थिक - समृद्धि का मार्ग प्रशस्त किया । समुद्र के गर्भ से लेकर अन्तरिक्ष तथा वैज्ञानिक खोजों का लम्बा सिलसिला शुरु हुआ । इससे मानव - समाज की खुशहाली बढ़ी । किन्तु इस पूँजीवादी समृद्धि ने वैयक्तिक अधिकार भावना को भी जन्म दिया, जिसाक विकास आगे चलकर एकाधिकारवादी और विस्तारवादी प्रवृत्ति के रूप में हुआ । अपने को महाशक्ति के रूप में स्थापित करने की होड़ में समृद्ध देशों ने विज्ञान का उपयोग अपने पक्ष में करते हुए उसका सैनिकीकरण करने में संकोच नहीं किया । अस्त्र - शस्त्रों की संख्या तेजी से बढ़ी । एक प्रकार मे यह उपक्रम विज्ञान का उपयोग अपने पक्ष में करते हुए उसका सैनिकोकरण करने में संकोच नहीं किया । विज्ञान ने इसका प्रतिकार सम्पूर्ण मानव - जाति से लिया । 1914 एवं 1942 में विश्व युद्ध

हुए । इन्होंने न केवल भौतिक नुकसान पहुँचाया, बल्कि विश्व समाज के सम्बन्धों के रस - भण्डार में ऐसा विष घोल दिया, जो मानव जाति की एकता और विश्व - शान्ति को धीरे - धीरे लील रहा है । दिन - प्रतिदिन तीसरे विश्व- युद्ध की संभावना बढ़ती जा रही है और निरस्त्रीकरण की तमाम सन्धियों के बावजूद मनुष्य के मन की चिन्ता लगातार अपना आकार बढ़ाती जा रही है ।

29.3 काव्य को प्रभावित करनेवाले पाश्चात्य दर्शन

29.3.1 मनोविश्लेषणवाद - फ्रायड और कलाविषयक धारणाएँ - आधुनिक काल की क्रान्तिकारी विचारणाओं में फ्राँयड का मनोविश्लेषणवाद अपना विशिष्ट स्थान रखता है । फ्राँयड के अध्ययन का आधार मानव - मस्तिष्क और उसके संवेग रहे हैं । फ्रायड ने मानव - मन का एक छोर चेतन और दूसरा अवचेत माना है । चेतन और अवचेतन के बीच एक अगम्य अन्धकारमय क्षेत्र वर्तमान है, जिसे अचेतन कहा जाता है । यह तीन स्थितियों वाला मनस्तन्त्र फ्रायड द्वारा पुनः तीन भागों में विभक्त किया गया है -

1) इदम्,
2) अहम्,
3) परम अहम् ।

ये तीन भाग मन की तीन मूल प्रवृत्तियों के द्योतक हैं । इदम् का सम्बन्ध अवचेतन मन से है, जो व्यक्ति की अतृप्त इच्छाओं, आकांक्षाओं और वासनावृत्तियों का अन्धकारमय आगार है । अवचेतन धरातल पर स्थित इदम् से ही व्यक्ति की कामशक्ति प्रेरणा प्राप्त करती है । फ्राँयड ने कामशक्ति को लिबिडो संज्ञा प्रदान की है । अहम् मनस्तन्त्र की वह वृत्ति है, जो बाह्य परिवेश से सम्बन्ध रखती है । अहम्, इदम् और परम अहम् के मध्य सन्तुलन स्थापित करने का कार्य करता है । परम अहम् का सम्बन्ध व्यक्ति द्वारा अर्जित नैतिक आदर्शों, मूल्यों और अभिरुचियों से होता है । इदम्, अहम् और परम् अहम् के पारस्परिक - सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए फ्राँयड ने कहा है कि इदम् व्यक्ति की अतृप्त, अवाछनीय (सामाजिक मूल्यों की दृष्टि से) इच्छाओं को लेकर सामने आता है, जबकि परम - अहम् उसे आदर्श जीवन बिताने की शिक्षा देता है ।

फलतः दोनों के मध्य संघर्ष छिड़ जाता है और व्यक्ति मानसिक द्वन्द्व से पीड़ित हो जाता है । इस स्थिति में अहम् अपनी भूमिका द्वारा दोनों के मध्य सामजस्य स्थापित करता है । वह व्यक्ति को वास्तविकता से परिचित कराता है ।

फ्रायड ने मन की (1) काम - वृत्ति और (2) मृत्यु - वृत्ति का भी विशद् विवेचन किया है । इरास या काम - वृत्ति को फ्रॉयड ने लिबिडो कहा है । लिबिडो की तीन स्थितियाँ हैं - (अ) स्वकाम या नारसीसिज़्म, इसमें व्यक्ति स्वयं से प्रेम करता है । (ब) मातृ रति (ओडिपस) और पितृ रति (इलेक्ट्रा), इसमें पुत्र अपनी माता से और पुत्री अपने पिता से प्रेम करती है । (स) विजातीय रति, इसमें स्त्री और पुरुष परस्पर आकर्षित होते हैं।

फ्रायड ने उपरोक्त मानसिक विश्लेषण के आधार पर ही अपनी कला सम्बन्धी धारणाओं की प्रस्तुति की है । उसके अनुसार लिबिडो कला का मूल स्त्रोत है। मनुष्य के अवचेतन में अन्यान्य दमित व अतृप्त आकांक्षाएँ रहती हैं । ये अवसर पाकर चेतन मन के धरातल पर आती हैं, किन्तु वहाँ से आदर्शवादी परम अहम् इन्हें प्रताड़ित कर वापस कर देता है । इदम् और परम अहम् के मध्य संघर्ष छिड़ जाता है । इस संघर्ष को अहम् समझोते का मार्ग तैयार करके शान्त करता है और यहीं अवसर पाकर मनुष्य की क्षोभपूर्ण अतृप्त इच्छाएँ कला व साहित्य के रूप में अपनी अभिव्यक्ति करती हैं । इस प्रकार साहित्य व कला अतृप्त व असामाजिक वृत्तियों का उदात्तीकरण मात्र है तथा साहित्य, कला, धर्म और संस्कृति तथा अर्थ के मूल में लिबिडो (काम) ही महत्वपूर्ण तत्त्व है। फ्रॉयड ने यह सिद्ध किया है कि किसी कृति में कलाकार की वर्जनाएँ ही काम - प्रतीकों के माध्यम से अपना अंकन करती हैं । काव्य - सृजन प्रकारान्तर से काम - प्रतीकों का पुनर्निर्माण है ।

फ्रायड ने कला को क्षतिपूरक माध्यम माना है । मनुष्य की वे इच्छाएँ, जो पूर्ण नहीं होतीं, अतृप्तिजन्य क्षोभ के साथ अचेतन में ग्रन्थियों का निर्माण करती रहती हैं । इन ग्रन्थियों से स्वप्नों का निर्माण होता है और ये ही उदात्त रूप में कला - सृजन का आधार बनती हैं ।

फ्रायड की मान्यताओं से यह भी स्पष्ट होता है कि इदम् ही संस्कृति का भी मूल स्थान है । क्योंकि इसके तत्त्व ही कला के माध्यम से उदात्त रूप ग्रहण करते हैं और संस्कृति के मूल्यों की स्थापना होती है । फ्रायड फ्रायड का कहना

है कि जब कृष्ण का उदात्तीकरण हो जाता है तब उसकी संकुचितता, बर्बरता, असामाजिकता, एकान्तिकता और ध्वंसात्मकता नष्ट हो जाती है और सांस्कृतिक मूल्यों का निर्माण होता है।

फ्रायड ने सम्प्रेषण को कला का महत्वपूर्ण तत्त्व स्वीकार किया है । फ्रायडीय रचना प्रक्रिया का स्वरूप है - अचेतन अनुभूति - अनुभूति का प्रकाशन - समान भूमि पर आधारित उसका भाव विनियोग । साधारणीकरण कला का अनिवार्य तत्त्व है । इसीलिए दिवा - स्वप्नों के यथातथ्य चित्रण का कला में कोई स्थान नहीं है क्योंकि इससे प्रेषणीयता बाधिता होती है।

फ्रायड के अनुसार कविता और क्रीड़ारत शिशु की स्थिति समान है जिस प्रकार शिशु अपनी क्रीड़ाओं से घनी आन्तरिक रागात्मकता स्थापित कर लेता है, उसी प्रकार कवि अपनी कल्पना - छवि से घनिष्ठता स्थापित कर लेता है । कवि पहले चरण में यथार्थ से पलायन करता है क्योंकि यथार्थ उसे सन्तुष्ट नहीं कर पाता । इसलिए वह ऐसे कल्पना जगत् की सृष्टि करता है जिसमें उसकी कामवृत्ति और यशलिप्सा पूर्ण होती है । दूसरे चरण में कवि पुनः यथार्थ के धरातल पर उतर आता है । फ्राँयड के अनुसार उसमें इतनी शक्ति होती है कि वह यथार्थ जीवन में अपनी कल्पना की सार्थकता प्रतिपादित कर देता है और इस प्रकार अपनी आकांक्षाओं की काल्पनिक पूर्ति किया करता है ।

एडलर : कला क्षतिपूर्ति का साधन - मनोविश्लेषण शास्त्र में वैयक्तिक मनोविज्ञान के जनक साहित्य व कला को हीन - भावना की क्षतिपूर्ति का साधन घोषित करते हैं । एडलर, फ्रायड की भाँति काम - वृत्ति को जीवन - व्यवहार का मूल उत्स स्वीकार नहीं करते क्योंकि "काम - वृत्ति जीवन की प्राथमिक समस्या नहीं है । जब व्यक्ति कामविषयक समस्याओं का अनुभव करता है, तब तक उसकी जीवन - शैली निर्मित हो चुकी होती है । काम जीवन - शैली का एक अंश मात्र है ।" एडलर की मान्यता है कि व्यक्ति के जीवन व्यवहार को आत्मप्रकाशन की प्रवृत्ति प्रेरित करती है । व्यक्ति में हीन - भावना पनपने के तीन कारण हैं -

1) शिशु के प्रति माता - पिता का व्यवहार ।
2) पारिवारिक परिवेश ।
3) शारीरिक - संरचना ।

बड़ा होकर व्यक्ति अपनी हीन - भावना को तुष्ट करने के लिए आत्म - प्रदर्शन करता है और अपने आस - पास अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहता है । एडलर ने व्यक्ति में हीन - भावना जगाने वाली तीन समस्याओं का भी विवेचन किया है । वे ये हैं -

1) समाज - विषयक,
2) रोज़गार विषयक,
3) काम और विवाह विषयक ।

जब व्यक्ति इन समस्याओं से लड़ते हुए असफल हो जाता है, तो पलायनवादी भावना का शिकार हो जाता है और किसी माध्यम से अपनी श्रेष्ठता प्रतिपादित करना चाहता है ।

अपनी कला सम्बन्धी धारणा की व्याख्या प्रस्तुत करते हुए एडलर ने कहा है कि कला के माध्यम से कलाकार समाज में अपनी श्रेष्ठता और प्रभुत्व स्थापित करके हीनता - बोध और अतृप्ति की पूर्ति करता है । क्रमशः निर्मित और चित्रित होती हुई उसकी कल्पना - सृष्टि उसके मन की पूर्व निश्चित विजय- भावना को ही प्रदर्शित करती है ।

एडलर की मान्यता है कि तादात्म्य और भाव - विनियोग कला के मूल तत्त्व हैं । इनके अभाव में रचना सामाजिक मान्यता प्राप्त नहीं कर सकती और न कलाकार का आत्म - प्रकाशन का उद्देश्य ही पूर्ण हो सकता है ।

एडलर ने कला को व्यक्ति के मानसिक विकास का साधन भी माना है। उनका कथन है कि साहित्य, मनोविज्ञान और शिक्षा व्यक्ति के मिथ्या अहं को नष्ट करते हैं और उसके व्यक्तित्व को सामाजिक धरातल की ओर परिचालित करते हैं । कला अन्ततः विश्व - बन्धुत्व की भावना का विकास करती है ।

युग : विचारों की मूल प्रेरणा मानसिक ऊर्जा - कार्ल युंग ने मनोविश्लेषण के क्षेत्र में अचेतन मन की व्याख्या नये रूप में की है । उनके अनुसार अचेतन मन के दो स्तर हैं । 1) व्यक्तिगत अचेतन और 2) सामूहिक अचेतन । व्यक्तिगत अचेतन में व्यक्ति की आदिम प्रवृत्तियों का संग्रह होता है और सामूहिक अचेतन में उत्तराधिकार में प्राप्त संस्कारित वृत्तियों का । सामूहिक अचेतन की चिन्तन प्रणाली को युंग ने आर्केटाइप्स कहा है । उनकी मान्यता है

M.A HINDI COUR -2 BLOCK-8 FND.-4 BACK

कि अचेतन मन ही वास्तविक होता है, चेतन मन तो अचेतन का परसोना (मुखौटा) है । अचेतन मन की वृत्तियाँ अपने को अप्रत्यक्ष रूप में विविध प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करती हैं । इसके पीछे उनका दमन नहीं होता, वरन् यह उनका स्वभाव है । इस प्रकार "युंग मनोविश्लेषण के क्षेत्र में कलात्मक रहस्यवाद का प्रवर्तन करते हैं । उन्होंने मानसिक जगत् की क्रियाओं के सन्दर्भ में कारणता के स्थान पर अकारणता के सिद्धान्त को प्रतिष्ठित किया, इन्द्रियग्राह्य जगत् को पर्याप्त न समझकर अतीन्द्रिय संवेदनों की संभावना की पुष्टि की और यान्त्रिक वैज्ञानिकता का निराकरण कर अतीन्द्रिय एवं अयान्त्रिक मानसिक संवेदनों की व्याख्या का प्रयास किया ।"

युंग ने कला - विषयक अवधारणा को स्पष्ट करते हुए मानसिक ऊर्जा को विचारों की मूल प्रेरणा माना है और इसे [साइकिक एनर्जी ' कहा है । उनके अनुसार मनुष्य द्वारा सम्पन्न समस्त क्रियाकलापों में साइकिक एनर्जी ही प्रकाशित होती है ।

कला रचनाकार की संकल्पत - आकांक्षा की समर्थ अभिव्यक्ति है । इसीलिए रचना - प्रक्रिया के मध्य कलाकार का विवेक सजग रहता है । अपने विवेक का प्रयोग करके कवि किन्हीं विशिष्ट उद्देश्यों की अभिव्यक्ति करने वाली कृति का सृजन करता है ।

कवि - कर्म की व्याख्या करते हुए युंग ने कहा है कि सृजन की प्रक्रिया अत्यन्त गहन है । रचनाकार इस गहन से तादात्म्य स्थापित कर लेता है, स्वयं को भूल जाता है । यह अभिभूत अवस्था रचनाकार की आत्मा की अनुभूति को अकृत्रिम रूप में बाहर लाने में समर्थ होती है ।

युंग ने कला के दो स्त्रोतों की ओर संकेत किया है । एक में कलाकार अन्तर्मुखी होता है और रचना में विवेक का प्रयोग करता है । दूसरे में कलाकार बहिर्मुखी होता है और अपनी रचना - शक्ति को एक अप्रत्यक्ष सत्ता की वेदी पर समर्पित कर देता है ।

युंग कलाकार के मानसिक विश्लेषण और उसकी कविता की व्याख्या को एक ही धरातल पर रखने के पक्षपाती नहीं हैं । उनकी दृष्टि में "फ्रॉयड की कलाविषयक धारणा हमें कलाकृति के मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन की अपेक्षा कवि की मनःदशा का विश्लेषण करने के लिए प्रेरित करती है और इस प्रकार

वह हमें कलाकृति के मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन से दूर कर देती है । यद्यपि कवि का मनोविश्लेषण एक महत्वपूर्ण समस्या है, किन्तु कलाकृति का भी अपना एक विशिष्ट महत्त्व है, जिसे नकारा नहीं जा सकता ।"

इस प्रकार मनोविश्लेषणवादी अवधारणा मुख्य रूप से मानसिक संवेगों, प्रक्रियाओं और क्रिया - कलापों पर आधारित है । नयी कविता ने इस अवधारणा से विभिन्न रचना - तत्त्व ग्रहण किए हैं । मुख्य रूप से अहम्वाद, क्षणवाद, चेतना का मुक्त - प्रवाह अथवा मुक्त आसंग, जैसी प्रधान मनोवृत्तियाँ इसी विचार - दर्शन की देन हैं, इसके अतिरिक्त नयी कविता में जो प्रतीक के क्षेत्र में स्वप्न प्रतीक और यौन प्रतीक का प्रयोग पाया जाता है, वह भी मनोविश्लेष्णवादी चिन्तन से ही प्रभावित है ।

29.3.2 मार्क्स का साहित्य - चिन्तन

"मार्क्स और एंगेल्स ने कला के स्रोत और कार्य से सम्बन्धित प्रश्नों को (या अधिक व्यापक रूप में सौन्दर्य - चेतना के प्रश्नों को) इतिहास के सन्दर्भ में निरुपित किया था । कला के विकास का प्रच्छन्न अर्थ मानव - सभ्यता के विकास, वर्ग - विरोधों के सुदूर परिणाम, अत्याचार, अन्याय और भूख से मुक्ति सम्बन्धी इन्सान की अदम्य इच्छा के सन्दर्भ में प्रकट हुआ है ।"

मार्क्सवादी साहित्य चिन्तन मूल रूप से इतिहास की भौतिक व्याख्या पर आधारित है । 'सलेक्टेड वर्क्स' (कार्ल मार्क्स), ' लिटरेचर एण्ड आर्ट', (मार्क्स तथा एंजिल) आदि ग्रन्थों के अध्ययन से यह विचारणा स्पष्ट होती है कि आर्थिक धरातल पर ही प्रत्येक समाज का ताना - बाना खड़ा किया जाता है तथा उसी भिति पर कला, धर्म, संस्कृति, साहित्य आदि चित्र टिके रहते हैं। जैसे ही आर्थिक - जगत में कोई हलचल होती है, वैसे ही समस्त सामाजिक पक्ष प्रभावित होने प्रारम्भ हो जाते हैं । उदाहरण के लिए जिस समय अर्थ - व्यवस्था का स्वरूप सामन्ती था, उस समय समाज में दास - प्रथा प्रचलित थी। उसके पश्चात् जब औद्योगिक अर्थ - व्यवस्था विकसित हुई तब समाज पूँजीपति और सर्वहारा इन दो वर्गों में आर्थिक स्रोत रहे हैं । इस सन्दर्भ में यदि आज के वातावरण पर ही दृष्टिपात किया जाए तो यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि अँगुलियों पर गिने जाने वाले पूँजीपति अर्थोत्पादन के साधनों पर

एकाधिकार स्थापित किए हुए हैं । ये व्यक्तिगत लाभ के लिए शोषण में व्यस्त हैं । इनकी अधिकांश योजना श्रमिकों का रक्तपान करके ही सफल होती हैं । सम्पूर्ण समाज श्रमिक और पूँजीपति वर्ग में विभक्त है । पूँजीपति और अधिक पूँजी का स्वामी बनता जा रहा है और श्रमिक निरन्तर बढ़ती गरीबी के अभिशाप को झेलता जा रहा है । विडम्बना यह है कि सर्वहारा वर्ग संख्या में अधिक होते हुए भी तथा किसी सीमा तक संगठित होते हुए भी कुछ कर पाने की स्थिति में नहीं है । कारण अत्यन्त स्पष्ट है - आज के इस सभ्यता (?) के युग में भी राजनीति समाज, संस्कृति इ पर अर्थ हावी है । पूँजीपति जब चाहता है सरकार बदल देता है । मार्क्स और एंजिल्स ने इसीलिए कहा था कि "राजनैतिक, नैयायिक, दार्शनिक, धार्मिक, साहित्यिक, कलात्मक इत्यादि विकास, आर्थिक - विकास पर निर्भर करता है ।"

इतिहास की अपनी विशिष्ट व्याख्या प्रस्तुत करते हुए, मार्क्स ने पूँजीपतियों के 'जनता की चेतना को सुला देने वाले' षड्यन्त्र की ओर भी संकेत किया है । उनके अनुसार अधिकांश सम्पन्न पूँजीपति व्यक्ति मानसों पर एकाधिपत्य स्थापित करने के लिए धर्म के नाम पर फैले धर्म के विकृत स्वरूप ने - 'सन्तोष ही परम् सुख है' , 'व्यक्ति का धर्म केवल कर्म करना है' , 'जितना भाग्य में होता है, उतना ही मिलता है' , 'मनुष्य जो सुख या दुःख भोगता है वह ईश्वरीय देन है' आदि मान्यंताओं की स्थापना करके निष्क्रियता को जन्म दिया। इन सूत्रों ने अव्यवस्था के विरुद्ध क्रान्ति की सभी संभावनाएँ धूमिल कर दीं। परिणामस्वरूप चालाक पूँजीपतियों और सत्ताधारियों की बन आई । उन्होंने धार्मिक उद्घोषणाओं की व्याख्या अपने पक्ष में करके साम्राज्यवाद व पूँजीवाद को फैलाया । भारत में तो अनेक अवसरों पर आज भी यह स्थिति देखी जा सकती है । मार्क्स ने इस स्थिति को देखा और धर्म को 'अधिकार चेतना नष्ट करने वाला' तथा 'अफीस' घोषित किया।

वस्तुतः मार्क्स की यह मान्यता थी, सभ्यता की इस दुःखद स्थिति का मूलकारण एक विशिष्ट व्यवस्था है । साथ ही वे यह भी मानते थे कि साहित्य इस विशिष्ट व्यवस्था से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। इसके दो कारण हैं - पहला तो यह कि रचनाकार एक सामाजिक प्राणी है और अपेक्षाकृत अधिक संवेदनधर्मी होने के कारण उसकी समस्त उद्भावनाएँ वातावरण से प्रभावित होती हैं । और दूसरा यह कि - पूँजीपति साहित्य को इस प्रकार

संचालित करने का भरसक प्रयास करता है कि क्रान्तिकारी चेतना विकसित न हो सके, बल्कि रचनाकार उसका चारण बना रहे ।

जहाँ मार्क्स साहित्य के विषय में यह सोचते थे, वहीं उसकी ऊर्जस्विता को भी स्वीकार करते थे । वे मानते थे कि जहाँ साहित्य समाज का यथार्थ चित्रण होता है, वहीं उसमें ऐसी क्रान्ति को उत्पन्न करने की सामर्थ्य भी होती है, जो समाज को बदल सके । मार्क्स का विश्वास था कि सर्वहारा वर्ग, पूँजीवाद से उत्पन्न हुआ है और यही इसके विरुद्ध क्रान्ति भी करेगा, किन्तु इस क्रान्ति की भूमि साहित्य तैयार करेगा । साहित्य समाजिक परिवर्तन, व्यक्ति - निर्माण और प्रगति का अप्रतिम साधन है ।

मार्क्स ने साहित्य की प्रकृति के साथ ही रचना - प्रक्रिया पर भी विचार किया है । उनकी मान्यता है कि कोई भी कृति अनायास यान्त्रिक प्रक्रिया का परिणाम नहीं है, बल्कि वह उन क्षणों का प्रक्रिया का परिणाम है, जिनमें कलाकार कलात्मक - सौन्दर्य के प्रति पूर्णतः जागरुक रहता है । मार्क्स के साहित्य चिन्तन से यह स्पष्ट होता है कि कवि - कर्म मात्र आत्म - प्रकाशन का साधन नहीं है, बल्कि उसमें प्रगति को जन्म देने की आकांक्षा सन्निहित है । यह दृष्टिकोण कला के उपयोगितावादी सिद्धान्त का समर्थक है ।

मार्क्सीय साहित्य - चिन्तन ने साहित्य को बहुत अधिक प्रभावित किया है । डोने, हेरिक, हरबर्ट, क्रेशो, बाइरन, शेली, ब्राउनिंग, उर्नाल्ड, पाटमोर आदि कवि किसी न किसी स्तर पर मार्क्सवादी काव्य - चेतना से प्रभावित रहे हैं । हिन्दी में प्रगतिवाद का आधार ही मार्क्सवादी काव्य - चेतना से प्रभावित रहे हैं । हिन्दी में प्रगतिवाद का आधार ही मार्क्सवाद था । यद्यपि प्रगतिवाद अधिक दिन नहीं चल सका, क्योंकि प्लेखोनेव, लेनिन, ट्राटस्की, क्रिस्टोफर काडवेल, रैल्फ फाक्स आदि मार्क्सवादियों ने मार्क्स के साहित्य चिन्तन को 'वादीय कटघरे' में बन्द कर दिया । इन्होंने कहा कि यदि कविता से वर्ग संघर्ष और सर्वहारा वर्ग की विजय को निकाल दिया जाए तो कविता व्यर्थ है । परिणामस्वरूप कविता साम्यवाद का घोषण - पत्र बनकर रह गई । मार्क्स ने कभी भी कविता के प्रचारवादी होने का समर्थन नहीं किया । उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि सिद्धान्त का बाह्य आरोपण कविता के स्वरूप को विघटित कर देता है ।

नयी कविता में मार्क्सवाद ने अनेक प्रवृत्तियों को जन्म दिया । धर्म, ईश्वर और भाग्यवाद में अविश्वास, शोषण का चित्रण, मानव - मुक्ति का समर्थन जीवन को बौद्धिक धरातल पर उतार कर देखना, किसी भी पदार्थेतर सत्ता पर विश्वास न करना आदि बातें मार्क्सीय - अध्ययन से ही आई हैं । मार्क्सवाद के अतिवादी पक्ष से बचते हुए नये कवि ने मार्क्सवादी चेतना को काफी सीमा तक आत्मसात् किया है ।

29.3.3 अस्तित्ववाद : *वैयक्तिक मूल्यों का अधिष्ठाता*

"अस्तित्ववाद किसी भी प्रकार की सत्ता के विरुद्ध विद्रोह का दर्शन है। अपनी सामाजिक और नैतिक विचारधारा में व्यक्तिवादी होने के कारण अस्तित्ववाद व्यक्तिनिष्ठि मूल्यों के विरोधी दर्शनों, मानवीय महत्ता, में अविश्वासकारक नैतिक मान्यताओं, मानवीय विकास संभावनाओं की निरोधक, पूर्व निर्धारित सामाजिक परम्पराओं और मानव को यन्त्र - मात्र मानने वाले राजनीतिक निर्णयों के विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया को लेकर चलता है ।"

अस्तित्ववाद यूरोपीय भूमि में उस समय उपजा जब प्रथम महायुद्ध की विभीषिका ने वहाँ के व्यक्ति के सामने उसके होने की संभावना के सामने प्रश्नचिह्न लगा दिया । वह यह अनुभव करने लगा कि व्यक्ति जिस रूप में जन्मा था वह इस रूप में नहीं जी रहा है बल्कि कुछ सामाजिक, राजनीतिक मूल्य उसका मानचाहा प्रयोग कर रहे हैं । ऐसे वातावरण में व्यक्तिगत मूल्यों की मौलिकता की रक्षा का प्रश्न उभरकर ऊपर आया । अनेक विद्रोही चिन्तकों ने अस्तित्व की रक्षा के प्रश्न पर विचार किया और घोषणा की कि व्यक्ति का उसके चिंतन पर पूर्ण स्वतन्त्र अधिकार है । अपनी इस मान्यता के घोष के सात अस्तित्ववाद जर्मनी में विकसित हुआ, फ्रांस में इसका चतुर्दिक् फैलाव हुआ और यूरोप का सारा साहित्य इससे प्रभावित हुआ।

एक दार्शनिक अवधारणा के रूप में अस्तित्ववाद के बीच लगभग डेढ़ शताब्दी पहले किर्केगार्द (डेनमार्क के प्रसिद्ध दार्शनिक) की पुस्तक 'कनक्लूडिंग अनसाइंटिफिक पोस्टस्क्रिप्ट' में खोजे जा सकते हैं । किर्केगार्द अपने जीवन में बहुत अधिक अशान्त थे । विसंगति को झेलना पड़ा, वहीं वे अपने पारिवारिक जीवन में अशान्त और क्षुब्ध रहे । उन्हें न प्रेम मिला और न पत्नी

व बच्चों की घनिष्ठता । ऐसे में किर्केगार्द के मन में जो तूफान उठा उसने उद्दाम वैयक्तिकता की पर्त से किर्केगार्द को ढँक दिया।

किर्केगार्द का कहना है कि व्यक्ति इस विश्व का अद्वितीय प्राणी है । वह सत्य से युक्त है और अपने अस्तित्व के प्रति जागरुक है । व्यक्ति के कार्यों की दिशा का निर्धारण कोई अन्य शक्ति नहीं, बल्कि उसके स्वयं के निर्णय करते हैं । किर्केगार्द यद्यपि आस्तिक अस्तित्ववादी विचारक थे और ईश्वर को अनन्त आत्मवत्ता का प्रतीक मानते थे । किन्तु वह व्यक्ति को किसी महत्तर का शूद्र अंश मानने के पक्ष में नहीं थे । वे तो यहाँ तक कहते थे कि केवल व्यक्ति ही अस्तित्व से युक्त है और प्रकृति से सारभूत है ।

अस्तित्ववाद के आधुनिक विचारकों और प्रबल समर्थकों में 'ज्याँ पाल सार्त्र' का महत्तवपूर्ण स्थान है । सार्त्र ने अपनी पुस्तक ' एग्ज़िस्टैन्शियलिज़्म एण्ड ह्यू मनिज़्म ' में कहा है कि मनुष्य स्वयं निर्मित है । वह किसी के द्वारा बना - बनाया नहीं मिलता, वह अपना निर्माण निर्णय की स्वतन्त्रता के आधार पर करता है । सार्त्र ने व्यक्ति को ही प्रतिष्ठित किया है और कहा है कि व्यक्ति स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है । व्यक्ति के निर्माण और जीवन व्यवहार में सार्त्र को ईश्वर की आवश्यकता अनुभव नहीं होती । अस्तित्व रक्षा के सम्बन्ध में सार्त्र ने व्यक्ति के भीतर असन्तोष की अनिवार्यता घोषित की है क्योंकि असन्तोष ही अन्ततः क्रान्ति का जनक है । उसी से अधिकारों के प्रति जागरुकता उत्पन्न होती है । सार्त्र के अस्तित्ववादी चिन्तन में मनुष्य की स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया है । उनके अनुसार मनुष्य के दायित्वों का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है क्योंकि चुनाव की स्वतन्त्रता होते हुए भी उसका चुनाव सामाजिक दृष्टि को ध्यान में रखकर किया जाता है । वह परिस्थितियों का दास बनने को विवश है । इसी से उदासीन है । यद्यपि इस कथन से सार्त्र के चिन्तन में अन्तर्विरोध प्रतीत होता है किन्तु यह सार्त्र का अपना नहीं, उस व्यक्ति का अन्तर्विरोध है जो एक ओर टूटता हुआ व्यक्तित्व होने को विवश है तथा दूसरी ओर स्वतन्त्र होने के लिए संघर्षरत है।

अस्तित्ववाद के क्षेत्र में मार्टिन हेडेगर ने मृत्युभय का विवेचन किया है। उनके विचार से मनुष्य का जीवन व्यथा से भरा हुआ है । भय, व्यथा से सम्बद्ध है और व्यथा मृत्यु से । अतः मृत्यु मनुष्य की चेतना को भय से ढक लेती है

और व्यक्ति हर क्षण मृत्यु से डरता रहता है । मृत्यु को हेडेगर ने चरम - शून्य की संज्ञा दी है और उसे ही निरपेक्ष सत्ता का प्रतिरूप माना है । मनुष्य का अस्तित्व अनिश्चित है । उसे जीवन - धारण करने के लिए विवश किया गया है जबकि वह अपने भविष्य के विषय में कुछ नहीं जानता । वह संसार में अकेला है । मृत्यु उसे अकस्मात दबोच लेती है। इसीलिए मनुष्य के सब कार्य व्यथा और भय की अभिव्यक्ति होते हैं।

हेडेगर के विचार में व्यक्ति की चेतना संसार की चेतना से सम्बद्ध है । वह अनजाने ही विशिष्ट स्थितियों के बीच भेज दिया जाता है, जहाँ उसकी स्वतन्त्रता परिमित हो जाती है । इससे भय की मात्रा बढ़ती ही है ।

अस्तित्ववादी विचारक कार्ल यास्पर्स ने सर्वथा नर्वान विचारों की प्रस्तुति की है । उनके चिन्तन में दो बातें महत्त्वपूर्ण हैं । पहली यह कि उन्होंने ईश्वर को सीमापारी (असीम), अज्ञय, ज्ञानातीत और अनन्त शक्ति सम्पन्न माना है । दूसरी यह कि धर्म को मानव व्यक्तित्व के वकास में बाधक न मानकर साधक माना है । उनके अनुसार आधुनिक समाज की यान्त्रिक संरचना ही व्यक्ति की स्वतन्त्रता का अपहरण करती है । अपनी पैरिनियल स्कोप फिलोसफी में यास्पर्स ने अस्तित्ववादी धारणा को स्पष्ट किया है। उन्होंने माना है कि अस्तित्व स्वतः न आत्मपरक है और न वस्तुपरक, बल्कि दोनों है । यह स्थिति है जिसका विवेचन विज्ञानसम्मत विधि से नहीं किया जा सकता । दूसरी ओर इससे यह भी सिद्ध होता है कि स्वाधीनता मनुष्यात्मा की अपरोजेय स्थिति है । यास्पर्स की यह भी मान्यता है कि आत्मा, संकल्प की आधारभूमि न होकर स्वयं ही सर्जनात्मक संकल्प है ।

अस्तित्ववादी चिन्तन के क्षेत्र में गैब्रिएल मार्सल का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है । उन्होंने मैं क्या हूँ ? पर अधिक विचार किया है और इसे रहस्यमय माना है । उनका कहना है कि ' मैं ' से ' अस्तित्व ' को अलग नहीं किय आजा सकता और अस्तित्व को बुद्धि द्वारा समझा नहीं जा सकता, उसे केवल अनुभव ही किया जा सकता है । मार्सल के विचार में जीवन भार से दबा रहता है । अस्तित्व का अर्थ इसी भार - मुक्ति से है ।

इस प्रकार एक दर्शन के रूप में ' अस्तित्ववाद की मूल स्थापना यह है कि सत्व के पूर्ण अस्तित्व की सत्ता है (एग्जिस्टेन्स प्रिसीड्ज एसेन्स), जिसका

तात्पर्य यह है कि आधारभूत और एक मात्र ध्रुव - वास्तविकता अस्तित्व की है । इसलिए उस चिन्तन का आरम्भ विषयनिष्ठता (सब्जेक्टिविटी) के बिन्दु से होता है । मानववादी अस्तित्ववाद इसे स्वीकार कर चलता है कि कोई ईश्वर, कोई सृष्टिकर्त्ता नहीं है ।" अस्तित्ववाद के प्रभाव से चितना भी साहित्य - सृजन किया गया है उसमें मानवीय आस्था की विच्छिन्न स्थिति, जीवन की शून्यता और सारहीनता, निराशावादी अतिरेक और मानस की विकृतियाँ भरी पड़ी हैं।

नयी कविता में नकेन के प्रपद्य, 'चक्रव्यूह' , 'हरी घास पर क्षण भर' 'नाश और निर्माण' आदि अनेकों कृतियों में अस्तित्ववादी मान्यताओं के प्रति तीव्र आकर्षण मिलता है । नकेन के प्रपद्य को तो इस वाद का उत्कृष्ट उदाहरण माना जा सकता है । किन्तु यह कहना अनिवार्य है कि अस्तित्ववादी कविताओं में एक अर्न्तीवरोध व्याप्त है और उसका कोई समाधान नहीं है, क्योंकि वह कविता के सात अस्तित्ववादी दर्शन का अर्न्तीवरोध है । वह यह कि अस्तित्ववादी रचनाकार एक ओर तो आत्मगत - सत्य की बात करता है साथ ही दूसरी ओर मूल्यों के प्रश्न पर भी धड़ल्ले से लिखता, बोलता है । नयी कविता ने यद्यपि अस्तित्ववादी साहित्य - चिन्तन से क्षणानुभूति, ईश्वर में अनास्था, मृत्युबोध आदि अनेक बातें ग्रहण की हैं किन्तु इससे हटकर किसी मूल्य का निर्माण वह नहीं कर सकी जबकि अस्तित्वाद मुक्त चिन्तन का बहुत बड़ा समर्थक है ।

29.3.4 अतियथार्थवाद व कला

अतियथार्थवाद कला को तर्क तथा बुद्धि के समस्त नियन्त्रणों से मुक्त करने वाला आन्दोलन है । सभ्यता, संस्कृति, धर्म, न्याय, नैतिकता, व्यक्ति के वास्तविकता स्वरूप पर पर्दा डाल देते हैं । ये सभी सामाजिकता और मानवीयता की दुहाई देकर व्यक्ति के चिन्तन की गति को अपनी ओर मोड़ लेते हैं । व्यक्ति जो स्वयं चाहता है, वह नहीं सोच सकता, बल्कि उसे वह सोचना पड़ता है, जो समाज चाहता है । मनुष्य स्वभाव से स्वार्थी होता है, किन्तु वही मनुष्य जब सोचता है, तो कहता है - ' मानवता हेतु प्राणोत्सर्ग श्रेष्ठ धर्म है - ' यह कहना मनुष्य के वास्तविक स्वरूप को प्रकट नहीं करता । अतियथार्थवाद इसी नियन्त्रण की प्रतिक्रिया स्वरूप जन्मा । उसकी प्रमुख मान्यता है कि व्यवस्था और सामाजिकता व्यक्ति के मूल स्वरूप को तोड़ते हैं । इसलिए व्यक्ति को

व्यवस्था और क्रमबद्धता के प्रति विद्रोही होना चाहिए तथा उसके चिन्तन पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं होना चाहिए ।

अतियथार्थवादी दर्शन विश्व - सृष्टि के नियन्ता के रूप में किसी मानवेतर सत्ता को मान्यता प्रदान नहीं करता । उसके अनुसार आदि से लेकर आज तक सृष्टि की विश्रृंखलित व्यवस्था का नियोजन व्यक्ति ने ही किया है । अतः किसी अन्य को यह श्रेय देना असंगत है ।

अतियथार्थवादी आन्दोलन प्रथम विश्वयुद्ध के बाद फ्रान्स में जन्मा । 1924 ई. में आन्द्रे ब्रेतों ने इसका घोषणा - पत्र प्रकाशित किया और कहा कि मनुष्य की अभिव्यक्ति पर तार्किक नियन्त्रण नहीं होना चाहिए, बल्कि 'विशुद्ध मानसिक स्वतःचालित' पद्धति पर अभिव्यक्ति - स्वातन्त्र्य प्रदान किया जाना चाहिए । अतियथार्थवादी अवधारणा के सन्दर्भ में यदि कुछ पीछे जाएँ तो इसके बीच अपोलोनेयर की 'लेस पेन्टर्स क्युनिस्ट', 'मेमल्स दि तिरोसिया', 'अलकूल्स' और 'केलिग्राम्स' आदि कृतियों में खोजे जा सकते हैं। कला के क्षेत्र में उसने 'मुक्त - आसंग' और कविता की 'केलिग्राम- शैली' की स्थापना की । इसलिए ग्विलाम अपोलोनेयर को काव्य में अतियथार्थवादी प्रतिष्ठापक माना जाता है । इसके अतिरिक्त त्रिस्तान - जारा, राबर्ट डेन्स, रेलेचार, जां काक्त्यों, हेनरी मिचाक्स, पाल एलुअर्द, लुइस आर्गन, हर्बर्ट रीड, फिलिप सुपौल, लुई आरागो और पाल डालुआर आदि ने इस दर्शन को दार्शनिक व काव्यगत आधार प्रदान किया ।

कला के क्षेत्र में अतियथार्थवाद की सर्वाधिक समर्थ स्थापना 'स्वतः प्रेरित लेखन' (ऑटोमेटिक राइटिंग) का सिद्धान्त है । इस मान्यता के पीछे फ्रॉयड का अन्तश्चेतनावाद स्पष्ट है । फ्रॉयड की मान्यता है कि व्यक्ति का आदिम स्वरूप अचेतन मन में ही देखा जा सकता है 'जैसे ही वह चेतन की धरती पर आता है, विघटित हो जाता है । इसी आधार पर अतियथार्थवादी कहते हैं कि रचनाकार को महत्तर यथार्थ, चेतनमन द्वारा कुठाराघात करने से पूर्व ही पकड़ लेना चाहिए । उनकी मान्यता है कि अनुभूति के आदिम - स्वरूप का अंकन ही कला की पूर्णता है । दूसरी ओर किसी भी विशिष्ट (बुद्धि, नैतिकता और तर्क से प्रभावित) काव्य - रूप, चित्रकला या मूर्तिकला के माध्यम से अनुभूति का चित्रांकन उसे विघटित कर देगा। इस धारणा के

अनुसार स्वप्न का यथावत् चित्रण अतियथार्थवादी कला का मुख्य उद्देश्य है । इस आन्दोलन के सशक्त समर्थक हर्बर्ट रीड ने अपनी उन्हीं कविताओं को श्रेष्ठ माना है, जो अर्द्ध सुषुप्तावस्था में रची गयीं। इन कविताओं में विश्रृंखलित भावों, विचारों और स्वप्नों की अभिव्यक्ति मिलती है तथा ये सामान्यतया दुरुह कविताएँ हैं । रीड ने दुरुहता को काव्य का महत्त्वपूर्ण गुण माना है ।

अतियथार्थवादी कला का दूसरा मुख्य सिद्धान्त है - मुख्य आसंग (फ्री एसोसिएशन) । इसके मूल में फ्रायड, युंग, मैक्डूर्डी आदि का बौद्धिक - आसंग का सिद्धान्त है । अतियथार्थवादियों के अनुसार व्यक्ति के चिन्तन को किन्हीं बँधी - बँधाई प्रणालियों में ढालना उसे कुण्ठित कर देना है । व्यक्ति स्वातन्त्र्य के लिए यह आवश्यक है कि उसे अभिव्यक्ति के स्वछन्द क्षेत्र प्रदान किए जाएँ। अतः मुक्त आसंग में नये माध्यमों को कविता का विषय बनाया जाता है ।

अपनी इन कलागत मान्यताओं के द्वारा इस आन्दोलन ने काव्य को भाव व भाषा दोनों स्तरों पर प्रभावित किया है । कला के सिद्धान्तों का निर्धारण करने में इस आन्दोलन में हीगल (द्वन्द्व - न्याय) व मार्क्स का भी उपयोग किया और लगभग समस्त प्रमुख देशों की कविता को प्रभावित किया ।

29.3.5 प्रतीकवाद

प्रतीकवाद मुख्यतः काव्य - भाषा का आन्दोलन है, जिसका विकास सन् 1860 से 1880 के बीच फ्रान्स में हुआ । स्टीफन मलार्मे को प्रतीकवादियों का गुरु माना जाता है, जिन्होंने कविता को दैवी - आवेग न मानकर शिल्पगत या दार्शनिक प्रयास माना है। इस आन्दोलन में 'एग्गर एलन पो' (शब्द की रहस्यात्मक शक्ति के अन्वेषी व कला, कला के लिए सिद्धान्त के प्रवर्त्तकों में से एक) तथा वोदलेयर (सौन्दर्य को मेधा का मूल उत्स मानने वाले तथा कलात्मक - चमत्कारों के समर्थक) के कला चिन्तन से बहुत अधिक प्रभाव ग्रहण किया । फ्रान्स के अतिरिक्त बेल्जियम में प्रतीकवादी अवधारणा को बहुत अधिक समर्थन मिला और पाल वैलेरी ने अपनी 'अल्बम दि वर्स एन्सिएस' , 'ला जेन पावर्स' , 'लेशिमेन्शियन मेरिन' और 'चार्म्स' आदि कृतियों में इस काव्यान्दोलन को सुदृढ़ आधार प्रदान किया।

प्रतीकवाद की मूल मान्यता यह है कि अनुभूति का प्रत्येक क्षण अ... होता है । प्रतीकवादी कवि इन क्षणानुभूतियों को विशिष्ट का...

माध्यम से पाठकों तक पहुँचना चाहता है । ऐसी काव्यभाषा प्रतीक - संकुल होती है और प्रतीक सरल बोधगम्य नहीं होते । सम्प्रेषण के लिए प्रतीक - सकुल भाषा को ही क्यों चुना जाए ? इसके उत्तर में प्रतीकवादी कहते हैं कि शब्द दीर्घकालीन प्रयोग के कारण चेतनाहीन हो गए हैं अतः यदि साहित्य को गतिशील बनाना है तो शब्दों में जान डालनी होगी । दूसरे प्रत्येक कवि का काव्य रचना - प्रक्रिया का स्वरूप विशिष्ट होता है । अतः प्रत्येक कवि का काव्य रचना - प्रक्रिया का स्वरूप विशिष्ट होता है । अतः प्रत्येक कवि के लिए आवश्यक है कि वह विशिष्ट भाषा को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाए । यह विशिष्ट भाषा अवश्य ही प्रतीकयुक्त होगी ।

प्रतीकवाद शब्द और भाषा - कौशल को महत्त्व प्रदान करता है । वह मानता है कि काव्य रचना की प्रक्रिया भाषा - कौशल की खोज है न कि काव्यात्मक अवस्था का निर्धारण । कवि भावों को नहीं पकड़ता (भाव तो प्रत्येक व्यक्ति के पास होते हैं) वह केवल काव्यभाषा का निर्धारण करता है ।

मलार्मे, विल्सन और वर्लेन आदि प्रतीकवादी विचारकों ने यह भी कहा है कि प्रतीकवादी कला का मुख्य उद्देश्य काव्य को संगीत की अनिश्चितता के निकट पहुँचाना है । संगीत में रूप और विषय संयुक्त हो जाते हैं । उसमें कोई भी तत्त्व ऐसा नहीं होता जिसकी अनुपस्थिति में वह संगीत रह सके । ठीक यही बात कविता में भी होनी चाहिए । काव्य - भाषा ऐसी हो जो विशुद्ध - पूर्ण हो। ऐसी भाषा अभिधात्मक नहीं हो सकती। वह प्रतीकमयी ही हो सकती है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रतीकवादियों को सामान्य - भाषा अभीष्ट नहीं है और न वे सामान्य अर्थ वाले शब्दों का प्रयोग करते हैं, वरन् वे शब्द को प्रतीक की सत्ता से भर देना चाहते हैं । नयी कविता ने इस प्रभाव को आकर्षण के साथ ग्रहण किया है । कहीं - कहीं तो अतिशय रुझान इस सीमा तक पहुँच गया है कि कविता अटकलबाजी - सी प्रतीत होने लगती है ।

29.3.6 बिम्बवाद और काव्य

सन् 1913 में एक. एस. फ्लिट ने बिम्बवाद' शीर्षक से एक समीक्षात्मक टिप्पणी प्रकाशित करवाई, जिसकी मूल स्थापनाएँ इस प्रकार थीं -

1. काव्य वस्तु का प्रत्यक्ष ग्रहण।

2. उन शब्दों का सर्वथा त्याग जो काव्य को अर्थवान बनाने में सहायक नहीं होते ।
3. लय योजना में यान्त्रिक पद्धति का त्याग और सांगीतिक नियमों का पालन।

एक दूसरा घोषणापत्र बिम्ब सिद्धान्त के प्रबल पोषक, कवि और आलोचक एज़रा पाउण्ड ने जारी किया । इसमें विस्तार से बिम्ब सिद्धान्तों की चर्चा की गई । संक्षिप्त सार इस प्रकार है -

1. काव्य में रचना तन्त्र को सर्वोपरि महत्त्व देना ।
2. नई संवेदनाओं के अनुरूप नई लय - पद्धति की खोज ।
3. मानव की बुनियादी स्वातन्त्र्य चेतना के रूप में मुक्त छन्द का आग्रह ।
4. विषय - ग्रहण में पूर्ण स्वतन्त्रता ।
5. ताजे और मूर्त बिम्ब का अन्वेषण तथा अमूर्त शब्दों का परित्याग ।
6. संक्षिप्त, कठोर तथा स्पष्ट रचनाओं का निर्माण ।
7. काव्यगत केन्द्रण शीलता ।

बिम्बवादी काव्यान्दोलन का उदय रोमानी काव्य की अतिशय भावुकता, कल्पनाशीलता और दुरुहता की प्रतिक्रिया में हुआ । सन् 1908 के लगभग इस आन्दोलन के जनक टी. ई. ह्यू.म ने 'नोट्स आन लेगुएज एण्ड स्टाइल' नामक ग्रन्थ में बिम्बवाद की सैद्धान्तिक व्याख्य की । इस ग्रन्थ में स्पष्ट कहा गया कि आधुनिकक कविता के लिए रोमाण्टिसिज्म निराशा शोक, दुरुहता और नियमित - लय उपयुक्त नहीं है । सन् 1908 में ही बिम्बवादियों के घोषणापत्र में ह्यू म 'पतझड़' शीर्षक कविता प्रकाशित हुई, जिसमें 'चाँद' को 'रक्तवर्णी किसान' और 'तारों' को उत्सुक श्वेत नागरिक बच्चों के रूप में बिम्ब बनाकर प्रस्तुत किया गया । वस्तुतः यहीं से काव्यगत रुढ़ियों के स्थान पर कलात्मक बिम्बों के माध्यम से अर्थ - सम्प्रेषण का प्रयास प्रारम्भ हुआ । सन् 1912 में एजरा पाउण्ड ने 'दि रिपोर्ट्स' नाम दिया । एजरा पाउण्ड ने ही 'सम इमेजिस्ट पोइट्स' का सम्पादन किया । इसका प्रकाशन 1915 में हुआ। इस ग्रन्थ की आल्डिंगटन लिखित था कुमारी लोवल द्वारा संशोधित भूमिका में इमेजिज्म के कुछ सिद्धान्तों की व्याख्या की गई । सन् 1914 में प्रकाशित 'इगोइस्ट' पत्रिका ने भी बिम्बवाद की स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई ।

बिम्बवाद, बिम्ब को कविता का प्राणतत्त्व मानता है । बिम्बवादी विचारक - टी. ई. ह्यू म, एजरा पाउण्ड, सी. डी. लेविस, जोसेफ टी. शिपले, एलेन्टेट स्टीफन ब्राउन और आई. ए. रिचर्ड्स आदि ने बिम्ब को बुद्धि व भाव की प्रस्तुति करने वाला, संवेदन का समर्थ सम्प्रेषक, अमूर्त्त भाव या विचार का पुनर्निर्माता, ऐन्द्रिका माध्यम से तार्किक व आध्यात्मिक सत्यों तक पहुँचने का मार्ग आदि - अनेक रूपों में पारिभाषित किया है । सी. डी. लेविस ने बिम्ब को ऐसा आसंकारिक शब्दचित्र कहा है जो संवेदनायुक्त और विशिष्ट रागात्मक भावों का उद्दीपक होता है ।

सामान्यतः भाषा के दो स्तर होते हैं । एक वह स्तर जो सपाट जानकारी प्रदान करने वाला होता है और दूसरा वह, जो कविता से सम्बद्ध होता है । पहले स्तर को डा. रामस्वरूप चतुर्वेदी सामान्य भाषा का वैज्ञानिक प्रयोग तथा भाषा का संवेगात्मक प्रयोग नाम देते हैं । भाषा की प्रक्रिया में सामान्य स्तर को काव्य के स्तर तक लाने का सशक्त माध्यम बिम्ब है । बिम्ब ही भाषा में संवेगात्मकता लाकर कवि की आन्तरिक रागात्मक अनुभूतियों को पुनर्जीवित करता है । यदि बिम्ब न हो तो कविता केवल वक्तव्य बनकर रह जाए और उसका उद्देश्य ही पूर्ण न हो । इसी कीरण बिम्बवादी बिम्ब को कविता का प्राण मानते हैं ।

बिम्बवाद के घोषणा पत्र से यह भी स्पष्ट होता है कि बिम्बवादी अर्थ केन्द्रण को महत्त्व देते हैं । वे उन शब्दों को काव्य - प्रक्रिया मे स्थान नहीं देते जो अर्थबोधक न हो तथा जिनसे दुरुहता का भय हो । इसी कारण बिम्बवादी काव्य मान्यताओं ने अनेक लघु कविताओं को जन्म दिया ।

बिम्बवाद के अनुसार कविता में ऐन्द्रिय संवेदन अनिवार्य है । और यह केवल बिम्ब के माध्यम से आ सकता है । क्योंकि बिम्ब का निर्माण ही ऐन्द्रिय संवेदन प्रक्रिया के आधार पर होता है । वह अन्तःकरण के गहन अनुभावों को सम्प्रेषित करने का कार्य करता है ।

बिम्बवाद ने कविता के शिला को भी प्रमाणित किया। मुक्त छन्दों का प्रयोग बिम्ब प्रयोग के कारण पर्याप्त रूप में बढ़ा । साथ ही इस आन्दोलन ने शब्दों के विशिष्ट प्रयोग कौ प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया । इसका मूल कारण

यह था कि बिम्बवादी रचनाओं ने शब्दों से चिपके प्रचलित अर्थों को छुड़ाया और उनको नये जीवन्त सन्दर्भों से जोड़ा ।

सैद्धान्तिक दृष्टि से यह प्रतीत होता है कि यदि अनुभूतियों और संवेदनाओं की यथार्थ तथा समर्थ अभिव्यक्ति करनी है तो बिम्बवाद की उपेक्षा नहीं की जा सकती किन्तु यह देखकर आश्चर्य होता है कि यह आन्दोनल अधिक नहीं चल सका । नयी कविता ने इस आन्दोलन की मान्यताओं को ग्रहण किया। बिम्ब प्रयोग की सार्थकता, बिम्ब और अनुभव की एकात्मकता स्थापित की। किन्तु अनुभूति से बिम्ब बनाने में मुक्तिबोध जैसे कुछ कवियों के अलावा अधिकांश ने बिम्ब निर्माण को काव्यकौशल का प्रतीक मान कर रचनाएँ कीं। कविता के लिए कुल मिलाकर यह कोई बहुत अच्छी बात नहीं हुई।

29.3.7 स्वच्छन्दतावाद तथा यथार्थवाद

स्वच्छन्दतावाद व यथार्थवाद की अवधारणाओं को नयी कविता काफी समय से अपने साथ लिए आ रही है । विकास के क्रम में कभी वह स्वच्छन्दतावाद की ओर झुकी और कभी यथार्थवाद की ओर । स्थिति यह है कि स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद के पारस्परिक तनाव ने नयी कविता के अभिनव रूप की सृष्टि की हैं । नया कवि एक ओर आत्मिक संकेतों के सहारे रुढ़ - अनुशासन से दूर खुलकर कुछ कहता है तो साथ हो यथास्थिति से पूर्ण रूप से कटना भी नहीं चाहता ।

29.4 निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन से यह ज्ञात होता है कि नयी कविता के प्रारंभ में अनेक देशीय एवं विदेशीय चिंतकों के विचार एवं वाद इसको बनाने में सहयोग देते रहे। फल स्वरूप नयी कविता के क्षेत्र में नयी चिंतन धारा शुरू हुई।

29.5 बोध प्रश्न

1. हिन्दी नयी कविता को प्रभावित करने में पाश्चात्य दर्शन का क्या योगदान है ? विवेचन कीजिए।
2. हिंदी नयी कविता की सामाजिक पृष्ठभूमि पर विचार कीजिए।

29.6 नमूने का उत्तर

1 हिन्दी नयी कविता की सामाजिक पृष्ठभूमि पर विचार कीजिए।

उत्तर - नयी कविता सामाजिक जमीन से उगी कविता है । इसका तात्पर्य यह नहीं कि अन्य युगों की कविता समाजनिरपेक्ष रही है, बल्कि केवल यह कि नयी कविता दूसरे युगों की कविता की अपेक्षा समाज को गहरी नजर से देखने की कोशिश करती है । उसका सामाजिक अवस्थितियों से सीधा सम्बन्ध है । संवेदना के स्तर पर उसका समाज से गहरा लगाव है । यह समाज के सुख - दुःख की बरा - बर की भागीदार है । समाज में घटने वाले अत्याधुनिक परिवर्तनों और परम्परागत मूल्यों के बीच उत्पन्न संघर्ष को, नयी और पुरानी पीढ़ी के बीच पैदा होने वाले मानसिक खिंचाव को, नव्य और बूर्जुआ संस्कृति की टकराहट से निकली आवाज को और व्यक्ति तथा समाज के सम्बन्धों के कसैले तनाव को नयी कविता ने अभिव्यक्ति दी है इसीलिए यह आवश्यक है कि उस सामाजिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण किया जाए, जो नयी कविता की ज़मीन बनी।

औद्योगीकरण व नया समाज - अठारहवीं शताब्दी में इंग्लैंड की औद्योगिक क्रान्ति में एक नई सामाजिक - सभ्यता का जन्म हुआ, जिसे औद्योगिक - सभ्यता कहा गया । इसकी सबसे बड़ी विशेषता थी - उत्पादन में मशीनों का आधिपत्य । 1764 ई. में जेम्सवाट द्वारा स्टीम इन्जिन का आविष्कार, 1764 में ही जेम्स हारग्रीव द्वारा सूत कातने वाले चर्खे का निर्माण, 1814 में जार्ज स्टीवेन्सन द्वारा रेलगाड़ी का प्रयोग, 1832 में सेमुअल मोर्स द्वारा टेलीग्राफ का आविष्कार, 1876 में ग्राहम वेल द्वारा टेलीफोन और 1896 में जी. मारकोनी द्वारा रेडियो का निर्माण तथा 1895 में रुडोल्फ डीजल द्वारा डीजल इंजिन का निर्माण औद्योगीकरण के विकास में सहायक सिद्ध हुए । इसी समय जीवन - मूल्यों में बदलाव आया । औद्योगीकरण में पूँजीपति और श्रमिक दो वर्ग पैदा हुए । कल कारखाने पूँजीपतियों के हाथ में चले गए और श्रमिक उनमें उत्पादन कार्य करने लगे । पूँजीपति अपनी चालों से धन - संचय करने लगे । उन्होंने इसके लिए शोषण को शस्त्र बनाया और इसके शिकार बने श्रमिक । श्रमिक लाख कोशिशें करने के बाद भी अपने श्रम का उचित मूल्य पाने में असफल होते रहे । अतः उनमें असन्तोष पनपा । शनैः - शनैः श्रमिक शोषण के विरुद्ध

आवाज़ उठाने लगे और ट्रेड यूनियनों का निर्माण हुआ । यहीं से पूँजीपति और श्रमिकों के बीच सीधा संघर्ष प्रारम्भ हुआ । इस संघर्ष को मार्क्स, एंजिल्स आदि ने दार्शनिक व्याख्या देकर परिपुष्ट किया । वर्गचेतना के साथ अधिकारों के लिए संघर्ष उत्तरोत्तर बढ़ता चला गया।

औद्योगीकरण ने सामाजिक ढाँचे को आमूल बदल डाला । व्यापारिक प्रतिष्ठानों में कार्य करने के लिए गाँवों से शहरों की ओर भागने की होड़ लग गई, जिससे संयुक्त परिवार - व्यवस्था विघटित हुई । शहरों की ओर भागने की प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप ही पारम्परिक यौन जीवन में अव्यवस्था पनपने लगी । क्योंकि पहले संयुक्त परिवार में अनुशासन की कठोरता के कारण काम - जीवन मर्यादित रहता था । शहरीकरण में विभिन्न स्थानों और भिन्न संस्कृतियों को मानने वाले एक स्थान पर एकत्र हुए । इनमें घनिष्ठता और रागात्मकता का अभाव था । फिर स्थान की संकुलता से पारस्परिक लज्जा रिवाज में ढल गई । फलतः एक अपरिचित दायरा बढ़ता चला गया, जिसमें से विश्रृंखलता और अमर्यादा पनपीं । अन्ततः यौन - जीवन अनियन्त्रित हो गया । बाद में इसी अनियन्त्रितता ने 'फ्री सैक्स' आन्दोलन को जन्म दिया।

औद्योगीकरण ने जहाँ एक ओर सामाजिक विखण्डन को जन्म दिया, वहीं उसने विभिन्न संस्कृतियों के मध्य प्रगाढ़ परिचय का मार्ग प्रशस्त किया। इससे एक 'समन्वित मानवीय - संस्कृति' का विकास हुआ । उद्योगों में कार्य करने के लिए सभी स्थानों और विविध संस्कृतियों के लोग एक स्थान पर एकत्र हुए। इससे विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों और सभ्यताओं ने एक - दूसरे को बहुत निकट से देखा। परिणाम यह हुआ कि सांस्कृतिक अज्ञानता और अजनबीपन की स्थिति समाप्त हुई तथा एक ऐसी संस्कृति का विकास हुआ जिसमें रुढ़ियों, सामाजिक - धार्मिक दुराग्रहों और बँधे - बँधाए जीवन - मूल्यों के लिए कोई स्थान नहीं था।

औद्योगीकरण की इन समस्त दशाओं ने नयी कविता को प्रभावित किया । औद्योगिक युग के तनाव, असन्तोष, नये सत्यों की खोज की जागरूकता और क्रान्तिकता ने नयी कविता को गति प्रदान की ।

शहरी समाज का निर्माण - यदि औद्योगिक सभ्यता का ऐतिहासिक विश्लेषण किया जाए तो यह निष्कर्ष निकलता है कि शहरी सभ्यता औद्योगिक सभ्यता

का प्रमुख परिणाम है । प्राचीनकाल में कृषि - सभ्यता के अन्तर्गत अधिकांश जनसंख्या प्रत्यक्ष रूप से तथा शेष परोक्ष रूप से कृषि पर आधारित थी । उस समय संयुक्त परिवार - व्यवस्था समाज का मूल तत्त्व थी । जनसंख्या कम होने के कारण तथा मशीनों के अभाव में व्यक्ति गाँवों में परम्परागत संस्कृति का पालन करते हुए रहते थे । धीरे - धीरे बढ़ी, जिसे वहन करना कृषि की सामर्थ्य से बाहर हो गया । इसी समय औद्योगीकरण प्रारम्भ हुआ । देखते ही देखते गाँवों से उद्योगों में काम पाने हेतु दौड़ प्रारम्भ हो गई। यहीं से नगरीकरण की प्रक्रिया तीव्र होने लगी ।

इस प्रकार आर्थिक कीली पर घूमते हुए जिस शहरी समाज का निर्माण हुआ उसमें अनेक वैयक्तिक व सामुदायिक समस्याएँ उत्पन्न हो गई । संयुक्त परिवार के स्थान पर वैयक्तिक परिवार - व्यवस्था, व्यक्ति - व्यक्ति के बीच संकुचित सम्बन्ध और परायापन, सम्बन्धों की रागात्मकता की शिथिलता, जीवनयापन का खर्चीला होना, व्यक्तियों के स्थान पर मशीनों की स्थापना के कारण बेरोज़गारी की समस्या जनसंख्या की अधिकता और आवास - सुविधा की कमी के कारण नैतिक अपराधों में वृद्धि तथा अस्वास्थ्यकर वातावरण की सृष्टि, मानसिक रोगों की बढ़ोत्तरी, प्रकृति से अलगाव, जीवन के प्रति अविश्वास, आत्महत्या के वातावरण का फैलाव, अति व्यस्त जीवन के कारण बच्चों के प्रति उदासीनता और इस प्रकार समाजव्यापी दिग्भ्रम की स्थिति उत्पन्न होना आदि अनेक समस्याएँ हैं, जो केवल शहरीकरण के कारण उत्पन्न हुई हैं और जिन्होंने आज के सम्पूर्ण सामाजिक जीवन को दूषित कर दिया है ! यही कारण है कि शहरीकरण के सन्दर्भ में समाज - वैज्ञानिकों द्वारा यह कहा जाता है कि शहर एक ओर मनुष्य की सभ्यता के सूचक हैं तो दूसरी ओर उसके विनाश के । प्रसिद्ध समाजशास्त्री - लुई ममफर्ड ने अपनी पुस्तक 'द कल्चर ऑव द सिटीज़' में शहरीकरण के निम्नांकित रूप दिए हैं -

1. आदि नगर,
2. नगर,
3. मुख्य नगर,
4. विशाल नगर,
5. आक्रान्त नगर,
6. मृत नगर ।

इस प्रकार आर्थिक विकास की ओर बढ़ती हुई भी शहरीकरण की प्रक्रिया विनाशवाहिनी ही सिद्ध हुई । इस परिवर्तन की यह कितनी बड़ी सांस्कृतिक विडम्बना है कि गाँव और नगर एकदम विरोधी धरातल पर स्थित हो गए ।

ध्यान देने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि यह जो विशिष्ट सामाजिक निर्मिति हुई जिसके अन्तर्गत सारा विश्व भौगोलिक ही नहीं सूक्ष्म मानसिकस्तर पर भी आश्चर्यजनक रूप से एक - दूसरे से सम्बद्ध हुआ, इसका मुख्य कारण विज्ञान रहा । विज्ञान ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर एक ओर अधिनायकत्व और दूसरी ओर मानव - मूल्यों में विघटन की प्रक्रिया को जन्म दिया ।

नारी - मुक्ति आन्दोलन - जब तक समाज के किसी भी भाग में परतन्त्रता है तब तक प्रगति अधूरी है। वस्तुतः इस आन्दोलन के मूल में यही भावना है।

प्राचीन भारत में समाज - रूपी रथ के दो पहिये थे - पुरुष व स्त्री। दोनों का ही समान महत्व और दायित्व था । यही कारण है कि वेदकालीन नारी स्वाभिमानपूर्वक अपने को सबला घोषित करती हुई दिखाई देती है -

अवीरामिव माम्यं शरारुरभि मन्यते
उलहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥
(ऋ. 10/86/9)

(अर्थात् यह घातक आक्रान्ता मुझे अबला की भाँति मानता है । मैं अबला नहीं वीरांगना हूँ, मैं वीर की पत्नी, मृत्यु से न डरने वाले, प्राणों को हथेली पर रख वाले वीर सैनिकों की मैं मित्र हूँ । विश्व में श्रेष्ठ, ऐश्वर्यशाली इन्द्र मेरा पति है ।)

दुर्भाग्य से किन्हीं सांस्कृतिक दुरभिसन्धियों के कारण स्त्रियों की स्थिति महत्त्वहीन होती गई और एक समय की अपाला, गार्गी, देवयानी, लोपामुद्रा, आम्रा घोषा, जुहू, यामी, इन्द्राणी आदि ऊर्जस्वी महाशक्तियों को दासी बनाकर चहारदीवारी में बन्द कर दिया गया । दीर्घकाल तक पुरुष - प्रधान समाज में नारी को वास्तविक सम्मान का स्थान नहीं मिल सका । रुढ़िवादी समाज और सामन्ती परिवेश में उसकी स्थिति और भी दयनीय और विषम हो गई ।

आधुनिक युग में पुनर्जागरण के साथ - साथ नारी - मुक्ति का स्वर दो स्तरों पर उभरकर सामने आया -

अ) सामाजिक संस्थाओं द्वारा ।

ब) राजनीतिक संस्थाओं द्वारा ।

सामाजिक - सांस्कृतिक सुधारवादी आन्दोलनों में आर्य - समाज, ब्रह्म - समाज, थियोसोफिकल सोसायटी, आर्य महिला समाज, इण्डियन वीमैन्स एशोसियेशन आदि का नाम उल्लेखनीय है । इन संगठनों ने स्त्रियों को सामाजिक सम्मान दिलाने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया ।

राजनीतिक दृष्टि से स्त्रियों में जागृति लाने और उन्हें राष्ट्रीय समस्याओं से पुरुषों के समान ही जूझने का अधिकार दिलाने की दिशा में आयरिश महिला एनीबेसेंट, मारग्रेट नोबुल और मारग्रेट कजन ने सन् 1914 के आसपास प्रशंसनीय कार्य किया । 1917 में एनीबेसेन्ट भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की प्रथम महिला अध्यक्ष चुनी गई । इसी वर्ष भारत कोकिला सरोजिनी नायडू द्वारा अनेक महिला प्रतिनिधियों के साथ ब्रिटिश सरकार को स्मरण - पत्र दिया गया और 1929 ई. में स्त्रियों को मताधिकार प्राप्त हो गया । नारी - जागरण का ही यह परिणाम हुआ कि 1930 में होने वाली 'गोलमेज कान्फ्रेंस' में सरोजोनी नायडू, जहाँनारा साहनवाज़ तथा राधाबाई सुब्बारायन को आमन्त्रित किया गया । राजनीतिक चेतना के इसी क्रम में सन् 1940 के चुनाव में 80 महिला विधायक चुनकर आई और यह स्पष्ट हो गया कि राष्ट्रीय विकास में स्त्रियों की भूमिका को न तो नकारा जा सकता है और न उनकी उपेक्षा ही की जा सकती है ।

पश्चिमी जगत में जो नारी - मुक्ति आन्दोलन चला, उसके विषय में यह जानना अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि वहाँ, 'स्त्री - पुरुष के सम्बन्धों' को, इस आन्दोलन का मुख्य मुद्दा माना गया । वहाँ शारीरिक स्वतन्त्रता (जिसे वैयक्तिक स्वतन्त्रता कहा गया) में ही राजनीतिक, सामाजिक आदि स्वतन्त्रताओं को जोड़ दिया गया और यह कहा गया कि यदि पुरुष वैयक्तिक धरातल पर स्त्री को शासित समझना छोड़ दे तो प्रत्येक क्षेत्र में अवसर की समानता स्वयं ही प्राप्त हो जाएगी । पाश्चात्य जगत् में जो नारी - मुक्ति आन्दोलन चला उसके मुख्य नारे थे - 'हमारी माँग समानता', 'हम घर से निकलकर संसार में आए

हैं', 'हम लैंगिक भेद के विरुद्ध हैं' , 'मुक्ति चाहिए बन्धन नहीं' , 'हम जानकारी और अपने शरीर पर नियन्त्रण की माँग करते हैं' , 'हमारे सौन्दर्य को विज्ञापन न बनाया जाए' ,आदि । पश्चिम के नारी - मुक्ति आन्दोलन को गति प्रदान करने में अमेरिकी नारी - मुक्ति की प्रमुख 'केट मिलेट' द्वारा लिखित 'सैक्सुअल पालिटिक्स' ,जर्मन ग्रीअर द्वारा लिखित 'द फीमेल युनक' तथा फ्रांसीसी उपन्यासकार सिमन द बउआ तथा नाथाली सर्रात की औपन्यासिक कृतियों का महत्त्वपूर्ण योगदान है । इनके प्रभाव से ही यौन सम्बन्धों में पुरुषों की अपेक्षा, समलैंगिक विवाह, स्वच्छन्द काम सम्बन्ध और एण्टी ब्रा मूवमैन्ट जैसी भावनाएँ खुलकर सामने आई । इस प्रकार आधुनिक युग में नारी - मुक्ति आन्दोलन ने सर्वथा नयी सामाजिक - सांस्कृतिक मान्यताओं की स्थापना की । इसके प्रभावों को इस प्रकार अंकित किया जा सकता है -

1. नारी - जागरण और नारी - मुक्ति - आन्दोलन के परिणामस्वरूप समाज में नारियों की द्वितीयक स्थिति समाप्त हुई ।

2. भारतवर्ष सहित विश्व के सभी प्रमुख देशों में नारियों के अधिकारों के पक्ष में वातावरण बना और बौद्धिक वर्ग ने इस सन्दर्भ में व्यावहारिक रूप से सोचना प्रारम्भ किया ।

3. नारी - जागरण आन्दोलन के फलस्वरूप विवाह कठोर सामाजिक बन्धन न होकर दो व्यक्तियों का पारस्परिक समझौता हो गया । इससे पुरुष व स्त्री समान धरातल पर स्थापित हुए ।

4. इस जागरण के परिणामस्वरूप ही स्त्रियों की बौद्धिक बौनेपन और सामाजिक निष्क्रियता की समस्या हल हुई । पहले स्त्री का संसार केवल घर था, प्रतियोगिता और संघर्ष का सामना उसे नहीं करना पड़ता था, अतः उसकी प्रतिभाएँ कुंठित हो जाती थी । किन्तु जब से उसे जीवन - संघर्ष में सक्रिय भूमिका निभाने का अवसर मिला, तब से उसकी प्रगति का मार्ग खुल गया और सामाजिक प्रगति की गति बढ़ी।

5. नारी जागरण - आन्दोलत के दौरान स्त्रियों की नैतिक पवित्रता का प्रश्न काफी उठाया गया । अनेक बहसें आयोजित कीं और अन्ततः यह निष्कर्ष निकला कि "यौन - योग मात्र औरत को नैतिक - अशुद्धि नहीं देता । वरना पति के सम्पर्क के बाद भी औरत पतिता गिनी जानी चाहिए थी ।"

6. डॉ. राममनोहर लोहिया जैसे प्रखर राजनीतिक - सामाजिक विचारकों में सौन्दर्य के प्रश्न को भी उठाया और यह सिद्ध किया कि गौर वर्ण को सुन्दरता का मापदण्ड नहीं माना जाना चाहिए अन्यथा स्त्री - समाज का अधिकांश भाग हीनभावना से ग्रस्त हो जाएगा । डॉ. लोहिया ने श्यामवर्ण को सौन्दर्य का आधार मानने पर बल दिया ।

नयी कविता ने इस आन्दोलन से एकाधिक प्रवृत्तियाँ ग्रहण की हैं । स्त्री - पुरुष के सम्बन्धों के तनाव का यथार्थ चित्रण, नैतिकता के सम्बन्ध में पनपती हुई नितान्त नयी मान्यताओं का चित्रण, मुक्त भोग का अंकन, स्त्री - पुरुष के बीच समानता की भावना का समर्थन, स्त्री - पुरुष के बीच प्रतियोगिता और उसके फलस्वरूप पैदा होने वाली गतिशीलता का अंकन् आदि बातें नयी कविता में मिलती हैं ।

आवागमन के साधनों का प्रभाव - आधुनिक समाज के निर्माण में आवागमन के साधनों के विकास का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है । जैसे - जैसे आवागमन व संचार के साधनों का विकास होता गया, एक राष्ट्रीय संस्कृति के निर्माण की संभावनाएँ बढ़ती चली गई । इसका प्रथम शक्तिशाली परिचय प्रथम स्वतंत्रता - संग्राम और उसके बाद के राष्ट्रीय आन्दोलन में मिला, जब विदेशी सत्ता के विरुद्ध पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण तक सारा देश एक साथ उठकर खड़ा हो गया ।

भारतीय समाज पर पाश्चात्य मान्यताओं और जीवन मूल्यों का प्रभाव भी आवागमन व संचार के साधनों के विकास से ही हुआ । इस सुविधा के उपलब्ध होने पर अनेक भारतीय शिक्षा प्राप्त करने बाहर के देशों में गए और पाश्चात्य दर्शन से ओत - प्रोत होकर लौटे । साथ ही दूसरे देशों के व्यक्ति धर्मप्रचारक, व्यापारी आदि के रूप में इस देश में आए । इससे भारतीय समाज को पाश्चात्य संस्कृति का परिचय मिला । पश्चिम के समाज की मान्यताओं के प्रभाव के कारण भारतीय समाज की जातिगत, धार्मिक और साम्प्रदायिक रुढ़ियाँ टूटीं तथा नये समाज का विकास हुआ ।

मात्र सामाजिक व धार्मिक क्षेत्र में ही नहीं, साहित्यिक क्षेत्र में भी एक देश के साहित्य का परिचय दूसरे देश के साहित्य से आवागमन व संचार के साधनों के विकास द्वारा ही सम्भव हो सका है । स्वच्छन्दतावाद, यथार्थवाद, अस्तित्ववाद, बिम्बवाद, प्रतीकवाद आदि अनेक काव्यरूपों का पालन -

पोषण पश्चिमी साहित्य में हुआ और उन्होंने बाद में भारतीय साहित्य, विशेषतः नयी कविता को प्रभावित किया । नयी कविता ऐसे मानव का चित्रण करती है, जिसका स्वरूप क्षेत्रीय नहीं अन्तर्राष्ट्रीय है, जो विश्व - समस्याओं से जूझ रहा है, जिसके जीवन पर व्यापक परिवेश प्रभाव डाल रहा है और जो विश्व - सभ्यता का गठन करने में जुटा है ।

विज्ञान - विश्वयुद्ध और मानव मूल्य - विज्ञान ने पूरी मानव - सभ्यता को सामन्ती - व्यवस्था से निकालकर पूँजीवादी - व्यवस्था के क्षेत्र में ला खड़ा किया । प्राकृतिक - स्त्रोतों के दोहन की सुविधा प्राप्त करके मनुष्य ने अपनी आर्थिक - समृद्धि का मार्ग प्रशस्त किया । समुद्र के गर्भ से लेकर अन्तरिक्ष तथा वैज्ञानिक खोजों का लम्बा सिलसिला शुरु हुआ । इससे मानव - समाज की खुशहाली बढ़ी । किन्तु इस पूँजीवादी समृद्धि ने वैयक्तिक अधिकार भावना को भी जन्म दिया, जिसाक विकास आगे चलकर एकाधिकारवादी और विस्तारवादी प्रवृत्ति के रूप में हुआ । अपने को महाशक्ति के रूप में स्थापित करने की होड़ में समृद्ध देशों ने विज्ञान का उपयोग अपने पक्ष में करते हुए उसका सैनिकीकरण करने में संकोच नहीं किया । अस्त्र - शस्त्रों की संख्या तेजी से बढ़ी । एक प्रकार से यह उपक्रम विज्ञान का उपयोग अपने पक्ष में करते हुए उसका सैनिकीकरण करने में संकोच नहीं किया । विज्ञान ने इसका प्रतिकार सम्पूर्ण मानव - जाति से लिया । 1914 एवं 1942 में विश्व - युद्ध हुए । इन्होंने न केवल भौतिक नुकसान पहुँचाया, बल्कि विश्व समाज के सम्बन्धों के रस - भण्डार में ऐसा विष घोल दिया, जो मानव जाति की एकता और विश्व - शान्ति को धीरे - धीरे लील रहा है । दिन - प्रतिदिन तीसरे विश्व - युद्ध की संभावना बढ़ती जा रही है और निरस्त्रीकरण की तमाम सन्धियों के बावजूद मनुष्य के मन की चिन्ता लगातार अपना आकार बढ़ाती जा रही है ।

29.7 सहायक पुस्तकें

1 नयी कविता का इतिहास : डॉ वैजनाथ सिंहल

2 नयी कविता में बिम्ब का वस्तुगत परिप्रेक्ष्य : गोविन्द द्विवेदी

3 अस्तित्ववाद और नयी कविता : रामविलास शर्मा

4 आधुनिक पाश्चात्य काव्य और समीक्षा के उपादान : डॉ नरेंद्र देव शर्मा

5 आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण : डॉ रमेश कुंतल मेघ।

NOTES

इकाई 30
हिन्दी नयी कविता की विकास यात्रा

इकाई की रूपरेखा

30.0 उद्देश्य

30.1 प्रस्तावना

30.2 नयी कविता का इतिहास

30.3 प्रथम तार सप्तक

30.4 दूसरा तार सप्तक

30.5 निष्कर्ष

30.6 बोध प्रश्न

30.7 नमूने का उत्तर

30.8 सहायक पुस्तकें

30.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में हिन्दी नयी कविता की विकास यात्रा का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- नयी कविता का इतिहास को समझ सकेंगे।
- नयी कविता की प्रथम तार सप्तक को पहचान सकेंगे।
- नयी कविता के द्वसरा तार सप्तक को जान सकेंगे।

30.1 प्रस्तावना

छायावादी काव्य सौन्दर्यजीवी काव्य था, यद्यपि छायावाद के समर्थक इसे स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह (छायावादियों की दृष्टि में वह सूक्ष्म इसी जगत का है), बाह्य जगत् और अन्तर्जगत के समन्वय द्वारा का विकास करने वाला काव्य, समष्टिग्राही वैयक्तिकता का काव्य - दर्शन, मानववाद और आदर्श की रेखाओं पर अवलम्बित काव्य, संयमित व अनुशासित विद्रोह का काव्य आदि हो जाता है कि इसकी चरम परिणति कल्पना की अतिशयता करने

से यह स्पष्ट आलंकारिक स्वरूप में होता है । दूसरे युग - धर्म की उपेक्षा, भी इस काव्य में देखने को मिलती है । जिस समय सारा विश्व आर्थिक मन्दी, फासिज्म, पूंजीवाद बेरोजगारी, द्वितीय विश्व - युद्ध के भय से आक्रान्त था उस समय छायावाद वन, पर्वतों, झीलों और अरहर के खेत में सौन्दर्य खोज रहा था, नदी में नौकाविहार कर रहा था या चन्दा - तारों का अजाना - रहस्यमय आमन्त्रण स्वीकार कर रहा था । काल और कविता के बीच की यह परस्पर विरोधी स्थिति अधिक करके नहीं टिकी । अतः शीघ्र ही युग के परिवेश ने एकाधिक छायावादी कवियों को कल्पना के ग्रह - नक्षत्रों से अपनी धरती पर लौटने को विवश कर दिया । महाकवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला के - खून सींचा खाद का तूने अशिष्ट, डाल पर मंडरा रहा कैपिटलिस्ट (कुकुरमुत्ता) - घोषणा करते ही काव्य - क्षेत्र में धमाका हुआ और प्रतीक रूप में छायावाद के अवसान की रस्म पूरी हो गई । परिस्थितियों की वास्तविकता को स्वीकारते हुए पन्त को सन् 1938 के 'रूपाभ' के सम्पादकीय में स्पष्ट घोषणा करनी पड़ी कि - 'इस युग की वास्तविकता ने जैसा उग्र रूप धारण कर लिया है इससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गए हैं ।'

30.2 नयी कविता का इतिहास

सन् 1936 के आसपास कविता किसी ठोस यथार्थ जीवी धरातल को तलाशने लगी थी और यह धरातल उसे 'प्रगतिवाद' के रूप में मिला ।

प्रसिद्ध उपन्यासकार ई. एम. फॉर्स्टर की अध्यक्षता में सन् 1935 में पेरिस में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई। इन्हीं दिनों डा. मुल्कराज आनन्द, सज्जाद जहीर और भवानी भट्टाचार्य आदि ने लन्दन में 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना की । इस संघ का प्रथम अधिवेशन सन् 1936 में मुंशी प्रेमचन्द की अध्यक्षता में लखनऊ में हुआ । विश्व कवि रवीन्द्राथ ठाकुर ने 'भारतीय प्र. ले. स.' का भरपूर स्वागत किया । लखनऊ सम्मेलन में लेखक समुदाय ने घोषित किया 'संघ का उद्देश्य साहित्य तथा अन्य कलाओं को जो अब तक रुढ़िपंथी हाथों में पड़कर निर्जीव होती जा रही है, मुक्त कारकर उनका निकटतम सम्बन्ध जनता से कराना और जीवन के यथार्थों की अभिव्यक्ति का माध्यम और नये विश्व का निर्माण करने वाली शक्ति बनाना है ।" इस घोषणा - पत्र को प्रगतिवाद का घोषणापत्र माना जा सकता

है और इससे तीन निष्कर्ष निकलते हैं - (अ) साहित्य व कला को रुढ़ियों से बचाने का संकल्प (ब) साहित्य का जनवादी स्वरूप और (स) यथार्थ जीवन की अभिव्यक्ति।

इन सभी निष्कर्षों के मूल में मार्क्सवादी मान्यताएँ हैं । प्रसंग को समझाने के दृष्टिकोण से यहाँ मार्क्स दर्शन के विषय में बताना उचित है । आधुनिक विचारकों ने एक मात्र मार्क्स दर्शन के विषय में बताना उचित है । आधुनिक विचारकों ने एक मात्र मार्क्स ही ऐसे हैं जिन्होंने अपनी सम्पूर्ण दृष्टि विश्व - व्यापी शोषण और उत्पीड़न पर केन्द्रित की तथा अपनी स्थापनाओं से सम्पूर्ण विश्वव्यवस्था को प्रभावित किया । मार्क्स दर्शन को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है -

1. सृष्टि की उत्पत्ति के पीछे कोई आध्यात्मिक सत्ता नहीं है, बल्कि इसका विकास द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर स्वयं हुआ है । अर्थात् मैटर (भौतिक सत्ता) ही सृष्टि का मूल तत्त्व है । दो शक्तियों के संघर्ष से तीसरी वस्तु की उत्पत्ति होती है । यही कारण है कि ईश्वर, जीवात्मा और धर्म आदि मात्र कल्पना है । हीगेल ने इस प्रक्रिया (थीसिस एण्टीथीसिस - सिन्थीसिस) को द्वन्द्व- न्याय कहा था ।

2. वस्तु की उत्पत्ति के चार अंग होते हैं (मूल पदार्थ, मशीन, श्रम तथा मूल्य वृद्धि) पूँजीपति केवल मूल पदार्थ व मशीन की व्यवस्था करता है । श्रमिक अपने श्रम द्वारा उत्पादन करता है । इसमें उसका स्वास्थ्य व श्रम दोनों ही व्यय होते हैं किन्तु उचित लाभांश (तथा श्रम का उइत मूल्य) उसे नहीं मिल पाता । मार्क्स ने इसे अतिरिक्त मूल्य का सिद्धान्त कहा है । इसी से वर्ग - वैषम्य, वर्ग - चेतना और तत्पश्चात वर्ग - संघर्ष प्रारम्भ होता है ।

3. प्रारम्भ से लेकर आज तक आर्थिक - व्यवस्था ने ही सामाजिक, राजनीतिक व सभ्यतागत संस्थाओं का रूप निर्धारण किया है । इस मान्यता की स्थापना करते हुए मार्क्स ने मानव इतिहास की भौतिक - आर्थिक व्याख्या प्रस्तुत की है । उन्होंने कहा है कि विश्व - मानवता सदैव से शोषक और शोषित दो वर्गों में विभक्त रही है । अब तक इतिहास दासयुग, सामन्त युग, पूँजीवादी युग ... अंशों में सर्वहारा के अधिनायकत्व को परख चुका है । इन सभी ...थे युग ने शोषण के विरुद्ध शस्त्र धारण करके व्यक्ति और व्यक्ति के

बीच व्याप्त वैषम्य को कम किया है । अतः इसी के आधार पर आर्थिक क्रान्ति होनी चाहिए। मार्क्स इससे आगे साम्यवादी युग की कल्पना करते हैं और इस एही मानव - मुक्ति का युग मानते हैं । साम्यवाद का मूलमन्त्र है समाज में आर्थिक स्तर पर समानता की स्थापना ।

4. मार्क्स के अनुसार धर्म भाग्यवाद और पराश्रितता को जन्म देता है, जिससे शोषित, शोषक के विरुद्ध नहीं खड़ा हो पाता और शोषण बढ़ता जाता है । इसीलिए मार्क्स को 'धर्म को जनमानस के लिए अफीस' की संज्ञा दी है ।

5. मार्क्स ने साहित्य को 'साम्यवाद की स्थापना के सबल माध्यम' के रूप में देखा है । क्योंकि जहाँ साहित्य समाज का सजीव दर्पण है वहीं उसमें क्रान्ति की अनन्त सम्भावनाएँ निहित हैं । अतः मूल रूप से साहित्यकार का कार्य ऐसे साहित्य का निर्माण करना है जो शोषित को शोषक के विरुद्ध जुझारु मुद्रा में ला सके और साम्यवाद की भूमिका तैयार कर सके ।

6. साहित्य को एक ऐसे वर्गहीन समाज की स्थापना में योग देना चाहिए जिसमें 'नैयक्तिक - समानता' और 'सम्पत्ति का आधार सामाजिक उपयोगिता' के आधार पर जीवन की स्थापना हो ।

मार्क्स की इन मान्यताओं ने प्रगतिवादी साहित्य को आधार - भूमि प्रदान की। शिवदानसिंह चौहान, यशपाल, डा. रामविलास शर्मा, शिवमंगल सिंह सुमन, नागार्जुन, रांगेय राघव, केदारनाथ अग्रवाल, अमृतराय, मुक्तिबोध, त्रिलोचन, पन्त, निराला और भैरवप्रसाद गुप्त जैसे प्रगतिवादी लेखकों ने साम्यवादी - समाज में ही विश्व कल्याण की सम्भावनाएँ देखीं और इसी आधार पर प्रगतिवादी१ - साहित्य की रचना की ।

रचनात्मक - स्वरूप की दृष्टि से प्रगतिवाद ने अपनी सारी चेतना पूँजीवादी व्यवस्था से उत्पन्न समस्याओं के चित्रण पर केन्द्रित की । व्यक्ति और व्यक्ति के सम्बन्ध, व्यक्ति के समाज समबन्ध यहाँ तक कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति तक को प्रगतिवाद ने साम्यवाद के परिप्रेक्ष्य में देखा । पन्त की 'ग्राम्या' और 'युगवाणी' की कविताएँ, रूपाभ में प्रकाशित अधिकाश रचनाएँ शिवमंगल सिंह 'सुमन' की 'लाल सेना', 'मास्को अब भी दूर है', 'स्तालिनग्राद' आदि कविताएँ, नागार्जुन की तर्पण, 'शपथ', रांगेय राघव का 'अजेय खण्डहर' खण्डकाव्य तथा इसी प्रकार की रचनाओं में मजदूरों और किसानों

को क्रान्ति के लिए तैयार करने का संकल्प दिखाई देता है । इनमें सामाजिक - यथार्थ और मानव - मुक्ति के स्वर गूँजते मिलते हैं । पूँजीवाद, सामन्तवाद, साम्राज्यवाद, सामाजिक वैषम्य, राजनीतिक स्वतन्त्रता का हनन करने वाला नाजीवाद व फासीवाद, व्यक्ति को भाग्य और कर्मफल के अदृश्य बन्धनों में बाँध देने वाला धर्म रुस की लाल सेना, मार्क्स की स्तुति, महात्मा जी का महानिर्माण, बंगाल का अकाल, साम्प्रदायिक झगड़े स्वतन्त्रता संग्राम, श्रमिकों और कृषकों की दुर्दशा, सर्वहारा वर्ग की विजय, वर्गहीन समाज की स्थापना, लोक जीवन से सम्पृक्ति, नारी स्वातन्त्र्य, भौतिकता एवं बौद्धिकता, सांस्कृतिक समन्वय, प्रकृति तथा प्रेम के प्रति भौतिक दृष्टिकोण आदि वे पक्ष हैं, जिनको प्रगतिवादी साहित्य में पूर्ण मनोयोग से चित्रित करने की घोषणा की गई है । इन सभी में जो उल्लेखनीय तथ्य है, वह यह कि इन सभी पक्षों में से सम्मिलित रूप से जो निष्कर्ष सामने आता है, वह एक ऐसे समाज की कल्पना प्रस्तुत करता है जो रुढ़ि रहित, वादमुक्त, आर्थिक छायावादी दुरुहता और मांसलता से निकालकर जनभाषा के समीप लाने का प्रयास किया ।

इतना सब होते हुए भी प्रगतिवाद दीर्घ - जीवी नहीं बन सका । इस सन्दर्भ में प्रगतिवाद पर अनेक आक्षेप लगाए गए । यह (प्रगतिवाद) मुख्यतः साहित्येतर आन्दोलन था, जो साहित्य के भीतर केवल राजनीतिक उपयोग के लिए साहित्यिकों का शोषण करने को आया था । श्रमिक जीवन से नितान्त अपरिचित कविता, साम्यवाद का समवेत गान करके काव्य को उद्देश्य, कला और लक्षणों से च्युत करने वाला, विद्रोह का स्वर अलापने वाला रुढ़िग्रस्त काव्य कुछ सीमित स्थितियों की स्थूल अभिव्यक्ति में सीमित सार्थकता वाला काव्य आदि इसी प्रकार के आक्षेप हैं । इन सबसे अलग एक विचारणीय विषय यह भी है कि क्या प्रगतिवाद मार्क्सवाद पर ही पूर्ण आस्था के साथ चल सका । क्या मार्क्स की साहित्यिक मान्यताओं और प्रगतिवाद की रचनाओं में साम्य है । इन दोनों प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक है । साहित्य के सम्बन्ध मे मार्क्स की स्पष्ट मान्यता थी कि साहित्य असीमित शक्ति - मान होता है । वह समाजव्यवस्था को बदल सकता है । इस दृष्टि से साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का अचूक-साधन माना जा सकता है । इसके बावजूद मार्क्स ने साहित्य को साम्यवाद का पिछलग्गू कभी नहीं बनाया । मार्क्स ने साहित्य और समाज के अन्तरावलम्बन को खोजना चाहा, साहित्य की मूल सत्ता (व्यापक जीवन चेतना) को निरुपित

किया, कलात्मक आनन्द को मात्र मनोरंजन का साधन न मानकर परिष्कृत और सुसंस्कृत दृष्टि का विषय बताया, साहित्य में विश्वधरातल को स्थापित करने की अभिलाषा की, किन्तु उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि साहित्य पर सिद्धान्त (मार्क्सवादी) का आरोपण होना चाहिए या साहित्य को किसी सिद्धान्त विशेष साहित्य पर सिद्धान्त का आरोप हो जाने से उसकी आत्मा विघटित हो जाती है। स्पष्ट है कि मार्क्स की साहित्यिक मान्यताएँ रुढ़िवादी नहीं हैं ।

किन्तु इधर प्रगतिवादी साहित्य को लीजिए - इसमें सैद्धान्तिक निरूपण को ही परम कर्तव्य माना गया है । 'लाल रुस है ढाल साथियों सब मजदूर किसानों का लाल रुस का दुश्मन साथी, दुश्मन सब इन्सानों का' (नरेन्द्र शर्मा) अथवा सुभाषचन्द्र बोस के लिए रचित 'कायर वह तो नेता बनता था चला गया, मिल गया लुटेरों की सेना में कायर,' (रामविलास शर्मा) अथवा 'धन्य मार्क्स चिरतमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर, तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर, ' (पन्त) आदि पंक्तियों में मार्क्सवाद की किस सामाजिक या साहित्यिक दार्शनिकता को व्याख्यायित किया गया है - यह समझ में आने वाली बात नहीं है । सिवा इसके कि बिना देखे चारण प्रवृत्ति का प्रदर्शन किया गया है ।

वस्तुतः प्रगतिवादियों ने उस दर्शन के मैनीफैस्टो पर आस्था व्यक्त की जो वास्तव में मार्क्स का नहीं था, अपितु प्लेखोनेव, रैल्फ फाक्स जैसे व्यक्तियों ने जिसे अपने अनुसार गढ़ा था । यही कारण है कि प्रगतिवादी साहित्य भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का राजनीतिक दस्तावेज बन गया ।

30.3 प्रथम तार सप्तक

सन् 1943 ई. में 'तार सप्तक' का प्रकाशन होते ही यह स्पष्ट हो गया कि कविता ने प्रगतिवाद से भिन्न चेतना ग्रहण करनी प्रारम्भ कर दी है । इस भिन्न चेतना का निर्माण प्रगतिवाद की मान्यताओं को उलटकर हुआ हो ऐसा नहीं है। हा अपने से पहले काव्यान्दोलन के रुढ़िगत स्वरूप को इसमें अवश्य ही नकारने की घोषणा की गई । समग्र रूप से इस चेतना का निर्माण युगीन परिवेश (निराशा, कुण्ठा, व्यष्टि और समष्टि का संघर्ष) और युगं - व्याप्त राजनीतिक - सामाजिक दर्शन के समन्वय से हुआ था ।

'तारसप्तक' में सात कवि संकलित हैं - गजानन मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा अज्ञेय । तारसप्तक की योजना फुटकर लघु संकलनों की परेशानियों से बचने के लिए तैयार की गई थी । जब प्रकाशन योजना सामने आ गई तब कहीं यह सोचा गया कि संकलित कवि अन्वेषी - दृष्टिकोण के हों । भूमिका में अज्ञेय ने स्पष्ट किया है कि "उनके (संकलित कवियों के) एकत्र होने का कारण ही यह है कि वे किसी एक स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं हैं, अभी राही है - राही नहीं, राहों के अन्वेषी । उनमें मतैक्य नहीं है, सभी महत्वपूर्ण विषयों पर उनकी राय अलग - अलग है - जीवम के विषय में, समाज और धर्म और राजनीति के विषय में काव्यवस्तु और शैली के, छन्द और तुक के, कवि के दायित्वों के प्रत्येक विषय में उनका आपस में मतभेद है वे सब परस्पर एक - दूसरे पर, एक - दूसरे की रुचियों, कृतियों और आशाओं-विश्वासों पर, एक - दूसरे की जीवन - परिपाटी पर और यहाँ तक कि एक - दूसरे के मित्रों और कुत्तों पर भी हँसते हैं ।" ' तारसप्तक' के कवियों ने अपने वक्तव्यों में काव्य पर विभिन्न मन्तव्य प्रस्तुत किए हैं । ये वक्तव्य कवियों की मानसिकता और अपने से पहले की कविता से भिन्नता स्पष्ट करने हेतु उद्धृत करने आवश्यक हैं -

"मैं कलाकार की "स्थानान्तरगामी प्रवृत्ति ' (माइग्रेशन इंस्टिंक्ट) पर बहुत जोर देता हूँ । आंज के वैविध्यमय, उलझन से भरे, रंग - बिरंगे जीवन को यदि देखना है, तो अपने वैयक्तिक क्षेत्र से एक बार तो उड़कर बाहर जाना ही होगा मेरी ये कविताएँ अपना पथ ढूँढ़ने वाले बेचैन मन की ही अभिव्यक्ति हैं ।"

"साहित्य में प्रगतिशीलता में मेरा विश्वास है और उसके लिए सचेष्ट प्रयत्न का भी मैं पक्षपाती हूँ । किन्तु कला की सच्ची प्रगतिशीलता कलाकार के व्यक्तित्व की सामाजिकता में है, व्यक्तित्वहीनता में नहीं ।"

" यदि कविता का उद्देश्य व्यक्ति की इकाई और समाज की व्यवस्था के बीच के सम्बन्ध के स्वर देना और उसको शुभ बनाने में सहायता करना है, तो हिन्दी के कवि को समाज से नाराज होकर भागने की बजाय समाज की उस शोषण सत्ता से लड़ना होगा, जिसने उसको कोरा स्वप्नाभिलाषी और कल्पनाविलासी बना छोड़ा है ।"

"कविता और पाठक के बीच में सीधा भाव - विनिमय होने के पक्ष में हूँ, इन दोनों के बीच में कवि व्यक्ति को लाना मैं अवांछित और अप्रस्तुत समझता हूँ। "

" विषय की मौलिकता का पक्षपाती होते हुए भी मेरा विश्वास है कि टेकनीक के अभाव में कविता अधूरी रह जाती है ।"

"हिन्दुस्तान के लिए गाँव पर भी साँझ की सुनहली धूप पड़ती है वह अपने गाँव जैसा ही लगता है ।"

"जो व्यक्ति का अनुभूत है, उसे समष्टि तक कैसे उसकी सम्पूर्णता में पहुँचाया जाये - यह पहली समस्या है, जो प्रगतिशीलता को ललकारती है ।"

तारसप्तकीय कवियों के इन वक्तव्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन कवियों के भाव - जगत पर तात्कालिक परिवेश ने पर्याप्त प्रभाव डाला । वह ऐसा युग था जिसमें व्यक्ति का व्यक्तित्व बँट गया था । एक ओर उसेक पास रुढ़ियों की सुदीर्घ परम्परा थी और दूसरी ओर गतिशील वातावरण था । जिसमें रूढ़ तथ्यों को साथ लेकर चलना असम्भव था । एक ओर कवि चारों ओर कुण्ठाओं और वर्जनाओं से उत्पन्न मृत्यु - भय से आक्रान्त जीवन था और दूसरी ओर भोगने और भोग के सन्त्रास को देखने, अनुभव करने वाला कवि। ऐसा नहीं है कि केवल आदमी भाग रहा था और कब मात्र देख रहा था, बल्कि कवि कहीं गहरे वातावरण से जुड़ा था । वह चाहता तब भी इससे बच नहीं पाता। इस वातावरण में कवि की स्थिति त्रिशंकु जैसी हो गई । टूटते हुए भी उसे सचेत रहना था । व्यक्तिगत समस्याओं के बीच में उसे सामाजिक संवेदना खोजनी थी अन्यथा कविता केवल कलात्मक बनकर रह जाती । अतः संक्रान्ति की स्थिति ने ही नई राहें खोजने की प्रेरणा दी । यही कारण है कि यद्यपि तारसप्तक में (गिरिजाकुमार माथुर के अलावा) सभी किसी न किसी रूप में मार्क्स से संबद्ध हैं, किन्तु (रामविलास शर्मा को छोड़कर) सभी अपनी - अपनी शैली में प्रगतिवाद के हटने का संकेत देते हैं । मुक्तिबोध की कविताएँ पथ ढूँढ़ने वाले बेचैन मन की अभिव्यक्ति हैं । मन की बेचैनी मुक्तिबोध को युद्ध - विभीषिका, व्यक्तिगत असफलताओं, अचेतन मन की कुण्ठाओं और एक के बाद एक लगते धक्कों से बिखरते व्यक्तित्व से मिली है । इसलिए कवि माइग्रेशन इंस्टिक्ट केसाथ जीना चाहता है । अज्ञेय ने बलपूर्वक साधारणीकरण

और सम्प्रेषण का प्रश्न उठाया है । आज वर्णन की पुरानी पार्टियों से पाठक से तादात्म्य स्थापित नहीं किया जा सकता, क्योंकि आज के पाठक से तादात्म्य स्थापित नहीं किया जा सकता, क्योंकि आज के पाठक का जीवन पहले से बहुत भिन्न है । एक ही समय में भी दो सामाजिक स्तरों वाले पाठकों की जीवन स्थितियाँ भिन्न हैं । अतः कवि के सामने अभिव्यक्ति के मानदण्डों पर पुनर्विचार की समस्या है । यह समस्या किसी हद तक अन्वेषण के लिए आधारभूमि तैयार करती है । दूसरी बात यह है कि मनोविश्लेषणात्मक पद्धति की स्थापना करके फ्रायड ने काम को जीवन का नियामक तत्त्व बना दिया । इससे व्यक्ति के जीवन में यौन - संस्कृति की स्थापना हुई और यह माना जाने लगा कि इस युग का व्यक्ति यौन - वर्जनाओं का पुंज है । इस सिद्धान्त ने कविता मे यौन प्रतीकों को प्रतिष्ठित किया।

प्रगतिवाद के बाद की कविता संवेदना के स्तर पर अपने से पहली कविता से भिन्न है । इन कवियों ने एक ओर व्यक्ति के आन्तरिक संघर्ष को अभिव्यक्ति दी वहीं उस बाह्य संघर्ष को भी पहचाना जो व्यक्ति, समुदाय और समाज के स्तर पर चल रहा था और जो हर स्तर पर व्यक्ति को ही दबाने की चेष्टा कर रहा था । तारसप्तक की अनेक कविताएँ ऐसी हैं जिनमें युग - व्याप्त द्वन्द्व और परिवेशगत सजगता मुखरित हुई है। मुक्तिबोध की - मृत्यु और कवि, अन्तदर्शन, आत्म - सम्वाद तथा प्रभाकर माचवे की - बीसवीं सदी, कापालिक आदि कविताओं में यह जागरुकता प्रभावित करती है ।

तारसप्तक की कविताओं के सम्बन्ध में एक बात अयन्त महत्त्वपूर्ण है वह यह कि हम नयी कविता में रोमानीपन और यथार्थवाद के जिस सन्तुलन की बात करते हैं, वह सप्तक की प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में पहले ही दिखाई दे जाता है । तारसप्तकक की प्रकृति सम्बंन्धी कविताओं में एक ओर सम्मोहन, और रोमैण्टिकता (अज्ञेय, गिरिजाकुमार आदि की कविताएँ) हैं तो दूसरी ओर उनमें व्यंग्य और विडम्बनापूर्ण स्थितियों (विशेषतः मुक्तिबोध की कविता) का चित्रण है । यह विशेषता इन कविताओं को नयी कविता के सर्म्प स्थापित कर देती है ।

तारसप्तक के कवियों में से अधिकांश ने शिल्प के प्रति भी अपना - अपना दृष्टिकोण प्रकट किया है । गिरिजाकुमार माथुर तो टेक्नीक के अभाव

में कविता अधूरी मानते हैं । अज्ञेय भी भाषा (शब्दों) में नये अर्थ भरने की बात करते हैं । प्रभाकर माचवे भाषा के विविध प्रयोग अपनी कविताओं में करते हैं, कुल मिलाकर इस काल की भाषा लोकोन्मुख होन: चाहती है । इसके लिए उसके सामने किसी सिद्धान्त से चिपकने की समस्या नहीं है, बल्कि उसका उद्देश्य वातावरण को इस प्रकार चित्रित करना है कि सामान्य पाठक परेशानी महसूस न करें । इसी कारण इन कविताओं मे एक ओर मुक्तिबोध और अज्ञेय हैं, जो प्रांजल, सामाजिक पदावली का प्रयोग करते हैं तो दूसरी ओर रामविलास शर्मा और प्रभाकर माचवे और गिरिजाकुमार हैं, जो लोक - संग्राहक भाषा का प्रयोग करते हैं । प्रतीक और बिम्ब की दृष्टि से इस संग्रह की कविताओं को अधिक पुष्ट नहीं माना जा सकता । क्योंकि अज्ञेय को छोड़कर अन्य कवि इस ओर अधिक सजग नहीं दिखाई देते, तब भी मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र, प्रभाकर माचवे ने अनेक सुन्दर बिम्बों की रचना की है ।

30.4 दूसरा तार सप्तक

'तारसप्तक' की परम्परा में ही 'दूसरा सप्तक' सन् 1951 ई. में प्रकाशित हुआ। सम्पादक थे श्री अज्ञेय और सम्पादित कवि - भवानीप्रसाद मिश्र, शुकुन्त माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश कुमार मेहता, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती ।

तारसप्तक की भाँति 'दूसरा सप्तक' के कवियों ने भी अपने - अपने वक्तव्यों मे कविता के सम्बन्ध में बहुत कहा है । भवानीप्रसाद मिश्र ने बिना किसी दर्शन टेक्नीक या वाद पर सोचे कविता रचने की बात कही । शकुन्त माथुर ने अपनी कविताओं का कारण 'स्वान्तःसुखाय' वृत्ति को बाताय । हरिनारायण व्यास ने कविकर्म के सम्बन्ध में अपनी मान्यताएँ (1) प्रतीक, जीवन - सान्निध्य से (2) भाषा में ग्रामगीतों के शब्द तथा लय और (3) पुरातन मान्यताओं, शब्दों और कहावतों में नया अर्थ भरना स्पष्ट की । शमशेर बहादुरसिंह ने जाग्रत कला चेतना से जीवन की सच्चाई और सौन्दर्य को सजीव रूप में चित्रित करना साधना माना । नरेशकुमार मेहता ने अपने वक्तव्य में अपनी छायावादी व रहस्यवादी कविताओं को कविता मानने से ही इन्कार कर दिया और निरन्तर प्रयोग की आवश्यकता पर बल दिया । रघुवीय सहाय ने कविता के सम्बन्ध में - सामाजिक यथार्थ के प्रति अधिक से अधिक जागरुक

रहने, जीवन में आक्सीजन, मार्क्सवाद और जनता के बीच अपनी - अपनी शक्ल पहचानने तथा कविता में जान पैदा करने के लिए मार्क्सवादी दृष्टि बनाने (कविता) पर मार्क्सवाद का गिलाफ चढ़ाने से बचने की बात कही । और धर्मवीर 'भारती' ने अपने लम्बे वक्तव्य मे रुचि व ईमानदारी पर जोर दिया। 'दूसरा सप्तक' के सम्पादक ने अवश्य ही अपनी आदत के अनुसार साधारणीकरण की समस्या को पुनः जोर - शोर से उठाया है । अज्ञेय की माल्यता है कि कवि कि रागात्मक अनुभूति पाठक तक बिना किसी कठिनाई के पहुँच जाना ही साधारणीकरण है जबकि नन्ददुलारे वाजपेयी इन कविताओं को साधारणीकरण से रहित मानते थे।

'दूसरा सप्तक' में वह मानसिक संघर्ष, भय और संत्रास नहीं है, जो सप्तकीय कवियों में था । इसकी कविताओं में नये व्यक्तित्व की तलाश अवश्य है । भवानीप्रसाद मिश्र उस व्यक्तित्व को खोजना चाहते हैं, जो अखण्डित, अकुण्ठ, सत्यवादी, स्वाभिमानी और प्यासे को चैन देने वाला है। नरेश मेहता उस विश्व व्यक्तित्व की स्थापना करना चाहते हैं, जो महानता व लघुता के सम्मिलन से बना है । इन सबसे अलग रघुवीर सहाय जिस व्यक्तित्व को सहेजना चाहते हैं, वह संशय और अनिश्चय से ग्रस्त है। वस्तुतः 'दूसरा सप्तक' के कवि सिद्धान्त - स्थापनाओं के प्रति भले ही अधिक आग्रही न रहे हों, उन्होंने अपने पारिवारिक जीवन को पास से देखा है। उनकी कविता का विषय वह व्यक्ति है जो गरीबी, भूख और बेरोजगारी से घिरा है, जिसका जीवन युद्ध के भय और अशिक्षा से पीड़ित है, जो पत्नी और बच्चों से भरे परिवार मे अकेला है । और जो स्थितियों की व्यर्थता को भोग रहा है । इस सबके साथ ही प्रेम के सम्बन्ध मे भारती और शमशेर ने बेलाग सोचा है । वे प्रेम को दो हृदयों के बीच का वैयक्तिक व्यापार रहने देना चाहते हैं, उसे धर्म से सम्बद्ध करना नहीं चाहते । 'दूसरा सप्तक' के कवियों ने लोकोन्मुख बोलचाल की भाषा को प्रयुक्त किया है ।

अब तक इन कविताओं की जितनी भी समीक्षाएँ प्रस्तुत की गई है वे सब सबसे पहले वाद (प्रयोगवाद), के खोल में बन्द करती हैं और इन कविताओं को प्रयोगवादी कविताएँ कहते ही सबसे पहले दोषारोपण यह किया जाता है कि इस काव्यान्दोलन का आगमन प्रगतिवाद के विरोध में हुआ । अन्य सारे दोष इसी परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किए जाते हैं । वास्तव में वह स्थिति और साहित्य

के लिए हानिकारक है । इस बात का कोई भी कारण समझ में नहीं आता कि पहले इन कविताओं को प्रयोगवादी कहा जाए (क्योंकि ऐसा केवल समीक्षकों ने किया है किसी कवि सहयात्री ने नहीं) और तब आगे बढ़ा जावे । आवश्यकता इस बात की है कि इस काव्यान्दोलन की न्यूनताओं और इसके वादी होने पर अलग - अलग विचार किया जाए ।

वैचारिक स्तर पर तारसप्तक की रचनाओं की मूल प्रेरणा हम मार्क्सवाद और तात्कालिक परिस्थितियों में खोज सकते हैं । यह निश्चित है कि उस समय सभी जीवन मूल्य विघटित हो रहे थे । एक ओर विषम परिस्थितियाँ व्यक्ति को कुण्ठाओं का अजायबघर बना रही थीं तो दूसरी ओर पूरे देश की साँस बिना पूछे कारतूसों में भरकर युद्ध में झोंक दी गई थी । इसके साथ ही एक तमाशा और हो रहा था - जिसमें राजनीतिज्ञों द्वारा युवा - संस्कृति को बिगाड़ा जा रहा था । इस सबने काव्य - चेतना में बदलाव उपस्थित किया और कवियों ने मानव के जीवन में फैली निरर्थकताओं और विषमताओं को चित्रित किया। किन्तु इस चित्रण के स्वरूप ने ही एक सीमा पर जाकर कविता को कविता के दायरे से बाहर धकेलना शुरु कर दिया। इन कविताओं ने एक सीमा के बाद मरणशील जीवन - दृष्टि को जन्म दिया, जबकि कविता की संस्कृति टूटन और घुटन में भी जीवनोन्मुख जीवन - दृष्टि को प्रकाशित करने की होती है । इसके पीछे इस काल के कवियों का स्वयंभू होने का दावा है, जिसने उनकी कविता से जीवन की ललकार को नहीं जुड़ने दिया।

अपनी दार्शनिक पीठिका तैयार करने में इस काव्यान्दोलन ने मार्क्स, फ्रायड, डार्विन के विचारों के साथ ही साथ अति यथार्थवाद, प्रतीकवाद, बिम्बवाद, दादावाद, आदि का सहारा लिया । इसके तीन प्रभाव सामने आए। पहला तो यह कि विश्व मानव से जुड़ने की घोषणा करके अनेक कविताएँ भारतीय इतिहास भूगोल से एकदम कटकर केवल पश्चिम (ग्रेब्स, डायलन, टामस, रीड, स्पेन्डर आदि) से सम्बद्ध हो गई । अतः यह सम्बद्धता अधूरी ही रही । क्योंकि विश्व मानव से जुड़ने का अर्थ था किसी से भी कटना, किन्तु ये कविताएँ अपने ही परिवेश से दूर जा पड़ीं । ऐसी स्थिति में इनमें अस्पष्टता आ गई । दूसरा प्रभाव यह हुआ कि अतियथार्थवादी स्थापनाओं के मोह ने अनेक स्थानों पर हीन और खण्डित सत्य की अनुशासनहीन भीड़ लगा दी । इससे अराजकता की स्थिति उत्पन्न हुई । इस सम्बन्ध में तीसरा

प्रभाव अप्रासंगिक प्रतीकों के रूप में सामने आया । अस्पष्ट बिम्बों, असम्बद्ध अप्रस्तुतों और अनेक खोखले प्रतीकों ने इन कविताओं की संप्रेणषीयता को काफी हद तक प्रभावित कर दुरुह बना दिया ।

अब केवल यही विचार करना शेष रह जाता है कि प्रस्तुत काल की कविताओं को प्रयोगवादी कविताएँ माना जाए अथवा अन्य कुछ ।

सन् 1943 में प्रकाशित 'तारसप्तक' की रचनाओं को प्रयगवादी काव्यांदोलन की रचनाएँ और उसी से एक नये आन्दोलन की शुरुआत की घोषणा की गई है। दूसरा सप्तक के प्रकाशन काल तक यह नाम प्रतिष्ठित हो गया। 'तारसप्तक' के सम्पादक महोदय ने ग्रन्थ की भूमिका और अपने वक्तव्य में बार - बार 'प्रयोग' शब्द का उल्लेख किया है । सम्भवतः अज्ञेय ने इस शब्द का प्रयोग कविता के आन्तरिक परिवर्तन को प्रकट करने और गतिहीनता को तोड़ने के लिए नई दिशा में बढ़ने की आवश्यकता पर बल देने के लिए ज़ोर देकर किया था। साथ ही उन्होंने किसी भी वाद की स्थापना और गुटबाजी से साफ इन्कार किया था। किन्तु इतने पर भी प्रयोगवाद की स्थापना और प्रयोगवाद के प्रवर्तक के रूप में अज्ञेय के सम्बन्ध में विपुल सामग्री सामने आई। इस सम्बन्ध में सर्वाधिक सचेत आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी दिखाई दिये। उन्होंने इस काव्यान्दोलन को न केवल प्रयोगवाद नाम ही दिया, बल्कि इस काव्य को अन्धाधुन्ध बताते हुए प्रयोगवादी साहित्यिक की भी परिभाषा दे डाली। यह विवाद उस समय और भी नया रंग लाया जब नकेनवादियों ने अज्ञेय और उनके सहयोगियों की कविता को प्रयोगवादी गद्दी के अयोग्य घोषित करते हुए अपने काव्य को असली प्रयोगवादी काव्य की संज्ञा दे डाली और उसी परिप्रेक्ष्य ने अपना एक घोषणापत्र भी प्रकाशित किया ।

'दूसरा सप्तक' की भूमिका मे अज्ञेय ने इन आक्षेपों का उत्तर दिया और कहा कि प्रयोगवाद नामक मतवाद का दायित्व उनके मत्थे अकारण और उनचाहे ही मढ़ दिया गया है । उन्होंने नन्ददुलारे वाजपेयी के आरोपों का भी उत्तर दिया। अज्ञेय का यह उत्तर व्यंग्य के बदले व्यंग्य के सहारे दिया गया है । प्रयोगवाद के सन्दर्भ में अज्ञेय ने कहा कि "प्रयोग का कोई वाद नहीं है । हम वादी नहीं रहे, न हीं है। न प्रयोग अपने - आप में इष्ट या साध्य है । ठीक इसी तरह कविता भी कोई वाद नहीं है, कविता भी अपने - आप में इष्ट या साध्य

नहीं है । अतः हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है, जितना हमें कवितावादी कहना।"

अज्ञेय के इस स्पष्टीकरण के बाद इस बात की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती कि सप्तकीय कविताओं पर प्रयोगवाद का गिलाफ चढ़ाया जाए, किन्तु ऐसा बराबर होता रहा है, आज भी हो रहा है । इस अपरिपक्व चेष्टा की अनेक हानियाँ सामने आई हैं -

1. प्रयोगवाद नाम से एक वाद की स्थापना होते ही आलोचकों ने तथा - कथित प्रयोगवाद की समीक्षा को प्रमुख कार्य बना लिया और कविताओं का मूल्यांकन उपेक्षित हो गया ।

2. वांद के कटघर में बन्द होते ही इन कविताओं को प्रगतिवाद की तीखी प्रतिक्रिया का परिणाम घोषित कर दिया गया ।

3. प्रयोगवाद की समीक्षा के नाम पर जितना कुछ लिखा गया उसमें अज्ञेय को आधार बनाकर अधिक लिखा गया । इससे अज्ञेय के सम्बन्ध में जो भी उचित - अनुचित समीक्षकों के मन में था वह सारा का सारा इन कविताओं पर थोप दिया गया ।

4. प्रयोगवाद के पुरोधा के रूप में अज्ञेय की स्थापना के कारण अन्य सभी कवि द्वितीय श्रेणी के बना दिए गए । यह सरासर आलोचकीय अन्याय ही है ।

5. प्रयोगवादी कविताओं पर अधिकांश आक्षेप इनके वादी होने के कारण लगाए गए । इनमें से काफी पूर्वाग्रहयुक्त और बकवास है ।

6. इस समूचे काण्ड का प्रभाव विश्वविद्यालयों से दूर उस साहित्यिक पीढ़ी पर बहुत बुरा पड़ा जो देस के अविकसित सुदूर क्षेत्रों में स्थित महावद्यालयों में तैयार हुई । क्योंकि वहाँ कोई भी काव्यान्दोलन बहुत देर बाद पहुँचता है, उससे सम्बन्धित आलोचनाग्रन्थ बहुत जल्दी पहुँच जाते हैं । प्रयोगवाद के सम्बन्ध में भी यही हुआ । परिणामस्वरूप वहाँ बिना किसी आधार के गुट बन गए, जो प्रयोगवाद की अप्रयोगी व्याख्याएँ अपनाकर संरक्षणवाद के शिकार हुए ।

7. इससे हिन्दी कविता की विकास - प्रक्रिया को समझने में नाहक परेशानी पैदा हुई ।

'तारसप्तक' के दूसरे संरक्षण में नेमिचन्द्र जैन ने इस समस्या को अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक लिया और लिखा कि - "दुर्भाग्यवश 'तारसप्तक' एक अन्य भ्रम का भी शिकार हुआ । साधारणतः यही माना और समझा जाता है - कि 'तारसप्तक' किसी सुचिन्तित काव्य - आन्दोलन का अग्रदल था, जिसके झण्डाबरदार और नेता उसके सम्पादक महोदय थे । फलस्वरूप सम्पादक महोदय से सम्बंधित विभिन्न साहित्यिक और व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों की तीखी आलोचना का बेसुमार बोझ भी 'तारसप्तक' के कवियों और उनके निमित्त से मोड़ लेती हुई नई काव्यचेतना को उठाना पड़ा । नेमिचन्द्र जैन ने स्पष्ट कहा कि "उसके (तारसप्तक के) कवि प्रयोगवादी नहीं थे, शायद उस अर्थ में ही नहीं जो सम्पादक ने पहले अपनी भूमिका में उन पर आरोपित किया - ।" इस प्रकार इस बात का कोई आधार नहीं है कि प्रस्तुत काव्यान्दोलन को प्रयोगवाद के अन्तर्गत जबर्दस्ती ठोक - पीटकर बैठाया जाए । साथ ही हमें यह भी मानना पड़ेगा कि इस सम्बन्ध में अधिकांश सामग्री का प्रकाशन स्तरीय रूप से नहीं हुआ है ।

आखिर इन कविताओं को सम्मिलित रूप में किस नाम से पुकारा जाए? यह प्रश्न अत्यन्त गम्भीर है क्योंकि इसके उत्तर से पूरी की पूरी काव्य - प्रवृत्ति प्रभावित होगी । तब भी बिना किसी विवाद की सृष्टि किए इन कविताओं को नयी कविता की पूर्ववर्ती कविताएँ कहा जा सकता है । इन कविताओं की प्रकृति का अध्ययन करने से इनमें और 'नयी कविता' आन्दोलन की काव्य - चेतना में अन्तर स्पष्ट परिलक्षित हो जाता है, किन्तु यह अन्तर विरोधी नहीं है, यह विकास प्रक्रिया का अन्तर है । इस बात को और अधिक स्पष्ट करना चाहें और इस समग्र काव्यान्दोलन को और अधिक स्पष्ट नाम देना चाहें तो इन कविताओं को 'संक्रमणकालीन कविताएँ' कह सकते हैं । इसके पर्याप्त कारण हैं, क्योंकि 1943 के आस - पास के संक्रमणकालीन वातावरण की अभिव्यक्ति इन कविताओं में हुई हैं । इस प्रकार की मूल्य संक्रमण प्रस्तुत करने वाली अनेक कविताएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं । अतः इन कविताओं को यह नाम देने में कोई हर्ज दिखाई नहीं देता । किन्तु यह नाम देने में हमारा उद्देश्य इस काव्यान्दोलन को किसी भी प्रकार किसी कटघरे में बन्द करना नहीं है और न किसी नये वाद की स्थापना करना है । यहाँ यह नाम निर्धारित करने का उद्देश्य मात्र यही है कि इस नाम से एक काल विशेष और स्थिति विशेष की अभिव्यक्ति

उनमें व्यंग्य और विडम्बनापूर्ण स्थितियों (विशेषतः मुक्तिबोध की कविता) का चित्रण है । यह विशेषता इन कविताओं को नयी कविता के समीप स्थापित कर देती है ।

तारसप्तक के कवियों में से अधिकांश ने शिल्प के प्रति भी अपना - अपना दृष्टिकोण प्रकट किया है । गिरिजाकुमार माथुर तो टेक्नीक के अभाव में कविता अधूरी मानते हैं । अज्ञेय भी भाषा (शब्दों) में नये अर्थ भरने की बात करते हैं । प्रभाकर मांचवे भाषा के विविध प्रयोग अपनी कविताओं में करते हैं, कुल मिलाकर इस काल की भाषा लोकोन्मुख होना चाहती है । इसके लिए उसके सामने किसी सिद्धान्त से चिपकने की समस्या नहीं है, बल्कि उसका उद्देश्य वातावरण को इस प्रकार चित्रित करना है कि सामान्य पाठक परेशानी महसूस न करें । इसी कारण इन कविताओं मे एक ओर मुक्तिबोध और अज्ञेय हैं, जो प्रांजल, सामाजिक पदावली का प्रयोग करते हैं तो दूसरी ओर रामविलास शर्मा और प्रभाकर माचवे और गिरिजाकुमार हैं, जो लोक - संग्राहक भाषा का प्रयोग करते हैं । प्रतीक और बिम्ब की दृष्टि से इस संग्रह की कविताओं को अधिक पुष्ट नहीं माना जा सकता । क्योंकि अज्ञेय को छोड़कर अन्य कवि इस ओर अधिक सजग नहीं दिखाई देते, तब भी मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र, प्रभाकर माचवे ने अनेक सुन्दर बिम्बों की रचना की है ।

'तारसप्तक' की परम्परा में ही 'दूसरा सप्तक' सन् 1951 ई. में प्रकाशित हुआ। सम्पादक थे श्री अज्ञेय और सम्पादित कवि - भवानीप्रसाद मिश्र, शुकुन्त माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश कुमार मेहता, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती ।

तारसप्तक की भाँति 'दूसरा सप्तक'· के कवियों ने भी अपने - अपने वक्तव्यों मे कविता के सम्बन्ध में बहुत कहा है । भवानीप्रसाद मिश्र ने बिना किसी दर्शन टेक्नीक या वाद पर सोचे कविता रचने की बात कही । शकुन्त माथुर ने अपनी कविताओं का कारण 'स्वान्तःसुखाय' वृत्ति को बाताय । हरिनारायण व्यास ने कविकर्म के सम्बन्ध में अपनी मान्यताएँ (1) प्रतीक, जीवन - सान्निध्य से (2) भाषा में ग्रामगीतों के शब्द तथा लय और (3) पुरातन मान्यताओं, शब्दों और कहावतों में नया अर्थ भरना स्पष्ट की । शमशेर बहादुरसिंह ने जाग्रत कला चेतना से जीवन की सच्चाई और सौन्दर्य को सजीव

रूप में चित्रित करना साधना माना । नरेशकुमार मेहता ने अपने वक्तव्य में अपनी छायावादी व रहस्यवादी कविताओं को कविता मानने से ही इन्कार कर दिया और निरन्तर प्रयोग की आवश्यकता पर बल दिया । रघुवीय सहाय ने कविता के सम्बन्ध में - सामाजिक यथार्थ के प्रति अधिक से अधिक जागरुक रहने, जीवन में आक्सीजन, मार्क्सवाद और जनता के बीच अपनी - अपनी शक्ल पहचानने तथा कविता में जान पैदा करने के लिए मार्क्सवादी दृष्टि बनाने (कविता) पर मार्क्सवाद का गिलाफ चढ़ाने से बचने की बात कही । और धर्मवीर 'भारती' ने अपने लम्बे वक्तव्य मे रुचि व ईमानदारी पर जोर दिया। 'दूसरा सप्तक' के सम्पादक ने अवश्य ही अपनी आदत के अनुसार साधारणीकरण की समस्या को पुनः जोर - शोर से उठाया है । अज्ञेय की मान्यता है कि कवि कि रागात्मक अनुभूति पाठक तक बिना किसी कठिनाई के पहुँच जाना ही साधारणीकरण है जबकि नन्ददुलारे वाजपेयी इन कविताओं को साधारणीकरण से रहित मानते थे।

'दूसरा सप्तक' में वह मानसिक संघर्ष, भय और संत्रास नहीं है, जो सप्तकीय कवियों में था । इसकी कविताओं में नये व्यक्तित्व की तलाश अवश्य है । भवानीप्रसाद मिश्र उस व्यक्तित्व को खोजना चाहते हैं, जो अखण्डित, अकुण्ठ, सत्यवादी, स्वाभिमानी और प्यासे को चैन देने वाला है। नरेश मेहता उस विश्व व्यक्तित्व की स्थापना करना चाहते हैं, जो महानता व लघुता के सम्मिलन से बना है । इन सबसे अलग रघुवीर सहाय जिस व्यक्तित्व को सहेजना चाहते हैं, वह संशय और अनिश्चय से ग्रस्त है। वस्तुतः 'दूसरा सप्तक' के कवि सिद्धान्त - स्थापनाओं के प्रति भले ही अधिक आग्रही न रहे हों, उन्होंने अपरने पारिवारिक जीवन को पास से देखा है। उनकी कविता का विषय वह व्यक्ति है जो गरीबी, भूख और बेरोजगारी से घिरा है, जिसका जीवन युद्ध के भय और अशिक्षा से पीड़ित है, जो पत्नी और बच्चों से भरे परिवार मे अकेला है । और जो स्थितियों की व्यर्थता को भोग रहा है । इस सबके साथ ही प्रेम के सम्बन्ध मे भारती और शमशेर ने बेलाग सोचा है । वे प्रेम को दो हृदयों के बीच का वैयक्तिक व्यापार रहने देना चाहते हैं, उसे धर्म से सम्बद्ध करना नहीं चाहते । 'दूसरा सप्तक' के कवियों ने लोकोन्मुख बोलचाल की भाषा को प्रयुक्त किया है ।

"यदि कविता का उद्देश्य व्यक्ति का इकाई और समाज की व्यवस्था के बीच के सम्बन्ध को स्वर देना और उसको शुभ बनाने में सहायता करना है, तो हिन्दी के कवि को समाज से नाराज होकर भागने की बजाय समाज की उस शोषण सत्ता से लड़ना होगा, जिसने उसको कोरा स्वप्नाभिलाषी और कल्पनाविलासी बना छोड़ा है ।"

"कविता और पाठक के बीच में सीधा भाव - विनिमय होने के पक्ष में हूँ, इन दोनों के बीच में कवि व्यक्ति को लाना मैं अवांछित और अप्रस्तुत समझता हूँ। "

" विषय की मौलिकता का पक्षपाती होते हुए भी मेरा विश्वास है कि टेकनीक के अभाव में कविता अधूरी रह जाती है ।"

"हिन्दुस्तान के लिए गाँव पर भी साँझ की सुनहली धूप पड़ती है वह अपने गाँव जैसा ही लगता है ।"

"जो व्यक्ति का अनुभूत है, उसे समष्टि तक कैसे उसकी सम्पूर्णता में पहुँचाया जाये - यह पहली समस्या है, जो प्रगतिशीलता को ललकारती है ।"

तारसप्तकीय कवियों के इन वक्तव्यों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन कवियों के भाव - जगत पर तात्कालिक परिवेश ने पर्याप्त प्रभाव डाला । वह ऐसा युग था जिसमें व्यक्ति का व्यक्तित्व बँट गया था । एक ओर उसेक पास रुढ़ियों की सुदीर्घ परम्परा थी और दूसरी ओर गतिशील वातावरण था । जिसमें रूढ़ तथ्यों को साथ लेकर चलना असम्भव था । एक ओर कवि चारों ओर कुण्ठाओं और वर्जनाओं से उत्पन्न मृत्यु - भय से आक्रान्त जीवन था और दूसरी ओर भोगने और भोग के सन्त्रास को देखने, अनुभव करने वाला कवि। ऐसा नहीं है कि केवल आदमी भाग रहा था और कब मात्र देख रहा था, बल्कि कवि कहीं गहरे वातावरण से जुड़ा था । वह चाहता तब भी इससे बच नहीं पाता। इस वातावरण में कवि की स्थिति त्रिशंकु जैसी हो गई । टूटते हुए भी उसे सचेत रहना था । व्यक्तिगत समस्याओं के बीच में उसे सामाजिक संवेदना खोजनी थी अन्यथा कविता केवल कलात्मक बनकर रह जाती । अतः संक्रान्ति की स्थिति ने ही नई राहें खोजने की प्रेरणा दी । यही कारण है कि यद्यपि तारसप्तक में (गिरिजाकुमार माथुर के अलावा) सभी किसी न किसी रूप में

मार्क्स से संबद्ध हैं, किन्तु (रामविलास शर्मा को छोड़कर) सभी अपनी - अपनी शैली में प्रगतिवाद के हटने का संकेत देते हैं । मुक्तिबोध की कविताएँ पथ ढूँढ़ने वाले बेचैन मन की अभिव्यक्ति हैं । मन की बेचैनी मुक्तिबोध को युद्ध - विभीषिका, व्यक्तिगत असफलताओं, अचेतन मन की कुण्ठाओं और एक के बाद एक लगते धक्कों से बिखरते व्यक्तित्व से मिली है । इसलिए कवि माइग्रेशन इंस्टिक्ट केसाथ जीना चाहता है । अज्ञेय ने बलपूर्वक साधारणीकरण और सम्प्रेषण का प्रश्न उठाया है । आज वर्णन की पुरानी पार्टियों से पाठक से तादात्म्य स्थापित नहीं किया जा सकता, क्योंकि आज के पाठक से तादात्म्य स्थापित नहीं किया जा सकता, क्योंकि आज के पाठक का जीवन पहले से बहुत भिन्न है । एक ही समय में भी दो सामाजिक स्तरों वाले पाठकों की जीवन स्थितियाँ भिन्न हैं । अतः कवि के सामने अभिव्यक्ति के मानदण्डों पर पुनर्विचार की समस्या है । यह समस्या किसी हद तक अन्वेषण के लिए आधारभूमि तैयार करती है । दूसरी बात यह है कि मनोविश्लेषणात्मक पद्धति की स्थापना करके फ्रायड ने काम को जीवन का नियामक तत्त्व बना दिया । इससे व्यक्ति के जीवन में यौन - संस्कृति की स्थापना हुई और यह माना जाने लगा कि इस युग का व्यक्ति यौन - वर्जनाओं का पुंज है । इस सिद्धान्त ने कविता मे यौन प्रतीकों को प्रतिष्ठित किया।

प्रगतिवाद के बाद की कविता संवेदना के स्तर पर अपने से पहली कविता से भिन्न है । इन कवियों ने एक ओर व्यक्ति के आन्तरिक संघर्ष को अभिव्यक्ति दी वहीं उस बाह्य संघर्ष को भी पहचाना जो व्यक्ति, समुदाय और समाज के स्तर पर चल रहा था और जो हर स्तर पर व्यक्ति को ही दबाने की चेष्टा कर रहा था । तारसप्तक की अनेक कविताएँ ऐसी हैं जिनमें युग - व्याप्त द्वन्द्व और परिवेशगत सजगता मुखरित हुई है। मुक्तिबोध की - मृत्यु और कवि, अन्तर्दर्शन, आत्म - सम्वाद तथा प्रभाकर माचवे की - बीसवीं सदी, कापालिक आदि कविताओं में यह जागरुकता प्रभावित करती है ।

तारसप्तक की कविताओं के सम्बन्ध में एक बात अयन्त महत्त्वपूर्ण है वह यह कि हम नयी कविता में रोमा ीपन और यथार्थवाद के जिस सन्तुलन की बात करते हैं, वह सप्तक की प्रकृति संम्बन्धी कविताओं में पहले ही दिखाई दे जाता है । तारसप्तकक की प्रकृति सम्बन्धी कविताओं में एक ओर सम्मोहन, और रोमैण्टिकता (अज्ञेय, गिरिजाकुमार आदि की कविताएँ) हें तो दूसरी ओर

वाली रचनाओं का बोध हो सके । संक्रमणकाल शब्द किसी फ्रेम की ओर संकेत नहीं करता, बल्कि वातावरण की ओर संकेत करता है, वह वातावरण जो इन कविताओं में मुखर हुआ है, जो इन पर थोपा नहीं गया है । इनके भीतर से ही उगा है । और जो इस काव्यान्दोलन के युगबोधक होने का प्रमाण भी है।

30.5 निष्कर्ष

छायावाद के बाद हिन्दी कविता ने जो यात्रा प्रारम्भ की थी वह सन् 1950 - 51 तक आते - आते नयी कविता में ढल गई । चौथे और पाँचवें दशक की कविता में जो प्रयोग चमत्कारी थे, वे छठे दशक की कविता में सहज होने प्रारम्भ हो गए । इसके साथ ही नयी कविता में वह खीझ भी नियन्त्रित हुई जो स्वतन्त्रता से पहले की स्थिति ही खीझ - भरी थी क्योंकि तब हमारे सामने परेशानियाँ ही परेशानियाँ थीं, जबकि स्वतन्त्रता के बाद अपने तन्त्र को अपना कहने का सुख और राष्ट्र - निर्माण की स्वर्णिम आकांक्षा मन में भरी थी । अतः दोनों कालों की कविताएँ कुछ भिन्न चेतना और भंगिमा की हैं ।

किन्तु चेतना और भंगिमा की भिन्नता दोनों कविताओं में किसी प्रकार की दुश्मनी खड़ी नहीं करती, बल्कि विकास - प्रक्रिया को सूचित करती है । अतः यह माना जाना चाहिए कि नयी कविता स्वतन्त्रता के बाद प्रारम्भ हुआ कविता आन्दोलन है जिसके विकास - सूत्र तीसरे - चौथे दशक की कविता तक फैले हुए हैं ।

30.6 बोध प्रश्न

1 हिन्दी नयी कविता की विकास यात्रा प्रस्तुत कीजिए।

2 हिन्दी नयी कविता का इतिहास समझाइए।

30.7 नमूने का उत्तर

1 हिन्दी नयी कविता का इतिहास समझाइए।

उत्तर - सन् 1943 ई. में 'तार सप्तक' का प्रकाशन होते ही यह स्पष्ट हो गया कि कविता ने प्रगतिवाद से भिन्न चेतना ग्रहण करनी प्रारम्भ कर दी है । इस

भिन्न चेतना का निर्माण प्रगतिवाद की मान्यताओं को उलटकर हुआ हो ऐसा नहीं है। हाँ अपने से पहले काव्यान्दोलन के रुढ़िगत स्वरूप को इसमें अवश्य ही नकारने की घोषणा की गई । समग्र रूप से इस चेतना का निर्माण युगीन परिवेश (निराशा, कुण्ठा, व्यष्टि और समष्टि का संघर्ष) और युग - व्याप्त राजनीतिक - सामाजिक दर्शन के समन्वय से हुआ था ।

'तारसप्तक' में सात कवि संकलित हैं - गजानन मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा अज्ञेय । तारसप्तक की योजना फुटकर लघु संकलनों की परेशानियों से बचने के लिए तैयार की गई थी । जब प्रकाशन योजना सामने आ गई तब कहीं यह सोचा गया कि संकलित कवि अन्वेषी - दृष्टिकोण के हों । भूमिका में अज्ञेय ने स्पष्ट किया है कि "उनके (संकलित कवियों के) एकत्र होने का कारण ही यह है कि वे किसी एक स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं हैं, अभी राही है - राही नहीं, राहों के अन्वेषी । उनमें मतैक्य नहीं है, सभी महत्वपूर्ण विषयों पर उनकी राय अलग - अलग है - जीवन के विषय में, समाज और धर्म और राजनीति के विषय में काव्यवस्तु और शैली के, छन्द और तुक के, कवि के दायित्वों के प्रत्येक विषय में उनका आपस में मतभेद है वे सब परस्पर एक - दूसरे पर, एक - दूसरे की रुचियों, कृतियों और आशाओं - विश्वासों पर, एक - दूसरे की जीवन - परिपाटी पर और यहाँ तक कि एक - दूसरे के मित्रों और कुत्तों पर भी हँसते हैं ।" ' तारसप्तक' के कवियों ने अपने वक्तव्यों में काव्य पर विभिन्न मन्तव्य प्रस्तुत किए हैं । ये वक्तव्य कवियों की मानसिकता और अपने से पहले की कविता से भिन्नता स्पष्ट करने हेतु उद्धृत करने आवश्यक हैं -

"मैं कलाकार की "स्थानान्तरगामी प्रवृत्ति ' (माइग्रेशन इंस्टिंक्ट) पर बहुत जोर देता हूँ । आज के वैविध्यमय, उलझन से भरे, रंग - बिरंगे जीवन को यदि देखना है, तो अपने वैयक्तिक क्षेत्र से एक बार तो उड़कर बाहर जाना ही होगा मेरी ये कविताएँ अपना पथ ढूँढ़ने वाले बेचैन मन की ही अभिव्यक्ति हैं ।"

"साहित्य में प्रगतिशीलता में मेरा विश्वास है और उसके लिए सचेष्ट प्रयत्न का भी मैं पक्षपाती हूँ । किन्तु कला की सच्ची प्रगतिशीलता कलाकार के व्यक्तित्व की सामाजिकता में है, व्यक्तित्वहीनता में नहीं ।"

अब तक इन कविताओं की जितनी भी समीक्षाएँ प्रस्तुत की गई हैं वे सब सबसे पहले वाद (प्रयोगवाद), के खोल में बन्द करती हैं और इन कविताओं को प्रयोगवादी कविताएँ कहते ही सबसे पहले दोषारोपण यह किया जाता है कि इस काव्यान्दोलन का आगमन प्रगतिवाद के विरोध में हुआ । अन्य सारे दोष इसी परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किए जाते हैं । वास्तव में वह स्थिति और साहित्य के लिए हानिकारक है । इस बात का कोई भी कारण समझ में नहीं आता कि पहले इन कविताओं को प्रयोगवादी कहा जाए (क्योंकि ऐसा केवल समीक्षकों ने किया है किसी कवि सहयात्री ने नहीं) और तब आगे बढ़ा जावे । आवश्यकता इस बात की है कि इस काव्यान्दोलन की न्यूनताओं और इसके वादी होने पर अलग - अलग विचार किया जाए ।

वैचारिक स्तर पर तारसप्तक की रचनाओं की मूल प्रेरणा हम मार्क्सवाद और तात्कालिक परिस्थितियों में खोज सकते हैं । यह निश्चित है कि उस समय सभी जीवन मूल्य विघटित हो रहे थे । एक ओर विषम परिस्थितियाँ व्यक्ति को कुण्ठाओं का अजायबघर बना रही थीं तो दूसरी ओर पूरे देश की साँस बिना पूछे कारतूसों में भरकर युद्ध में झोंक दी गई थी । इसके साथ ही एक तमाशा और हो रहा था - जिसमें राजनीतिज्ञों द्वारा युवा - संस्कृति को बिगाड़ा जा रहा था । इस सबने काव्य - चेतना में बदलाव उपस्थित किया और कवियों ने मानव के जीवन में फैली निरर्थकताओं और विषमताओं को चित्रित किया। किन्तु इस चित्रण के स्वरूप ने ही एक सीमा पर जाकर कविता को कविता के दायरे से बाहर धकेलना शुरु कर दिया। इन कविताओं ने एक सीमा के बाद मरणशील जीवन - दृष्टि को जन्म दिया, जबकि कविता की संस्कृति टूटन और घुटन में भी जीवनोन्मुख जीवन - दृष्टि को प्रकाशित करने की होती है । इसके पीछे इस काल के कवियों का स्वयंभू होने का दावा है, जिसने उनकी कविता से जीवन की ललकार को नहीं जुड़ने दिया।

अपनी दार्शनिक पीठिका तैयार करने में इस काव्यान्दोलन ने मार्क्स, फ्रायड, डार्विन के विचारों के साथ ही साथ अति यथार्थवाद, प्रतीकवाद, बिम्बवाद, दादावाद, आदि का सहारा लिया । इसके तीन प्रभाव सामने आए। पहला तो यह कि विश्व मानव से जुड़ने की घोषणा करके अनेक कविताएँ भारतीय इतिहास भूगोल से एकदम कट कर केवल पश्चिम (ग्रेव्स, ग्यलन, टामस, रीड, स्पेन्डर आदि) से सम्बद्ध हो गई । अतः यह सम्बद्धता

अधूरी ही रही । क्योंकि विश्व मानव से जुड़ने का अर्थ था किसी से भी कटना, किन्तु ये कविताएँ अपने ही परिवेश से दूर जा पड़ीं । ऐसी स्थिति में इनमें अस्पष्टता आ गई । दूसरा प्रभाव यह हुआ कि अतियथार्थवादी स्थापनाओं के मोह ने अनेक स्थानों पर हीन और खण्डित सत्य की अनुशासनहीन भीड़ लगा दी । इससे अराजकता की स्थिति उत्पन्न हुई । इस सम्बन्ध में तीसरा प्रभाव अप्रासंगिक प्रतीकों के रूप में सामने आया । अस्पष्ट बिम्बों, असम्बद्ध अप्रस्तुतों और अनेक खोखले प्रतीकों ने इन कविताओं की संप्रेणषीयता को काफी हद तक प्रभावित कर दुरुह बना दिया ।

अब केवल यही विचार करना शेष रह जाता है कि प्रस्तुत काल की कविताओं को प्रयोगवादी कविताएँ माना जाए अथवा अन्य कुछ ।

सन् 1943 में प्रकाशित 'तारसप्तक' की रचनाओं को प्रयगवादी काव्यांदोलन की रचनाएँ और उसी से एक नये आन्दोलन की शुरुआत की घोषणा की गई है। दूसरा सप्तक के प्रकाशन काल तक यह नाम प्रतिष्ठित हो गया। 'तारसप्तक' के सम्पादक महोदय ने ग्रन्थ की भूमिका और अपने वक्तव्य में बार - बार 'प्रयोग' शब्द का उल्लेख किया है । सम्भवतः अज्ञेय ने इस शब्द का प्रयोग कविता के आन्तरिक परिवर्तन को प्रकट करने और गतिहीनता को तोड़ने के लिए नई दिशा में बढ़ने की आवश्यकता पर बल देने के लिए ज़ोर देकर किया था। साथ ही उन्होंने किसी भी वाद की स्थापना और गुटबाजी से साफ इन्कार किया था। किन्तु इतने पर भी प्रयोगवाद की स्थापना और प्रयोगवाद के प्रवर्त्तक के रूप में अज्ञेय के सम्बन्ध में विपुल सामग्री सामने आई। इस सम्बन्ध में सर्वाधिक सचेत आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी दिखाई दिये। उन्होंने इस काव्यान्दोलन को न केवल प्रयोगवाद नाम ही दिया, बल्कि इस काव्य को अन्धाधुन्ध बताते हुए प्रयोगवादी साहित्यिक की भी परिभाषा दे डाली। यह विवाद उस समय और भी नया रंग लाया जब नकेनवादियों ने अज्ञेय और उनके सहयोगियों की कविता को प्रयोगवादी गद्दी के अयोग्य घोषित करते हुए अपने काव्य को असली प्रयोगवादी क़ाव्य की संज्ञा दे डाली और उसी परिप्रेक्ष्य ने अपना एक घोषणापत्र भी प्रकाशित किया ।

'दूसरा सप्तक' की भूमिका मे अज्ञेय ने इन आक्षेपों का उत्तर दिया और कहा कि प्रयोगवाद नामक मतवाद का दायित्व उनके मत्थे अकारण ही

उनचाहे ही मढ़ दिया गया है । उन्होंने नन्ददुलारे वाजपेयी के आरोपों का भी उत्तर दिया। अज्ञेय का यह उत्तर व्यंग्य के बदले व्यंग्य के सहारे दिया गया है । प्रयोगवाद के सन्दर्भ में अज्ञेय ने कहा कि "प्रयोग का कोई वाद नहीं है । हम वादी नहीं रहे, न हीं है। न प्रयोग अपने - आप में इष्ट या साध्य है । ठीक इसी तरह कविता का भी कोई वाद नहीं है, कविता भी अपने - आप में इष्ट या साध्य नहीं है । अतः हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है, जितना हमें कवितावादी कहना।"

अज्ञेय के इस स्पष्टीकरण के बाद इस बात की कोई गुंजाइश नहीं रह जाती कि सप्तकीय कविताओं पर प्रयोगवाद का गिलाफ चढ़ाया जाए, किन्तु ऐसा बराबर होता रहा है, आज भी हो रहा है । इस अपरिपक्व चेष्टा की अनेक हानियाँ सामने आई हैं -

1. प्रयोगवाद नाम से एक वाद की स्थापना होते ही आलोचकों ने तथा - कथित प्रयोगवाद की समीक्षा को प्रमुख कार्य बना लिया और कविताओं का मूल्यांकन उपेक्षित हो गया ।

2. वाद के कटघर में बन्द होते ही इन कविताओं को प्रगतिवाद की तीखी प्रतिक्रिया का परिणाम घोषित कर दिया गया ।

3. प्रयोगवाद की समीक्षा के नाम पर जितना कुछ लिखा गया उसमें अज्ञेय को आधार बनाकर अधिक लिखा गया । इससे अज्ञेय के सम्बन्ध में जो भी उचित- अनुचित समीक्षकों के मन में था वह सारा का सारा इन कविताओं पर थोप दिया गया ।

4. प्रयोगवाद के पुरोधा के रूप में अज्ञेय की स्थापना के कारण अन्य सभी कवि द्वितीय श्रेणी के बना दिए गए । यह सरासर आलोचकीय अन्याय ही है ।

5. प्रयोगवादी कविताओं पर अधिकांश आक्षेप इनके वादी होने के कारण लगाए गए । इनमें से काफी पूर्वाग्रहयुक्त और बकवास है ।

6. इस समूचे काण्ड का प्रभाव विश्वविद्यालयों से दूर उस साहित्यिक पीढ़ी पर बहुत बुरा पड़ा जो देस के अविकसित सुदूर क्षेत्रों में स्थित महाविद्यालयों में तैयार हुई । क्योंकि वहाँ कोई भी काव्यान्दोलन बहुत देर बाद पहुँचता है, उससे

सम्बन्धित आलोचनाग्रन्थ बहुत जल्दी पहुँच जाते हैं । प्रयोगवाद के सम्बन्ध में भी यही हुआ । परिणामस्वरूप वहाँ बिना किसी आधार के गुट बन गए, जो प्रयोगवाद की अप्रयोगी व्याख्याएँ अपनाकर संरक्षणवाद के शिकार हुए ।

7. इससे हिन्दी कविता की विकास - प्रक्रिया को समझने में नाहक परेशानी पैदा हुई ।

'तारसप्तक' के दूसरे संरक्षण में नेमिचन्द्र जैन ने इस समस्या को अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक लिया और लिखा कि - "दुर्भाग्यवश 'तारसप्तक' एक अन्य भ्रम का भी शिकार हुआ । साधारणतः यही माना और समझा जाता है - कि 'तारसप्तक' किसी सुचिन्तित काव्य - आन्दोलन का अग्रदल था, जिसके झण्डाबरदार और नेता उसके सम्पादक महोदय थे । फलस्वरूप सम्पादक महोदय से सम्बंधित विभिन्न साहित्यिक और व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों की तीखी आलोचना का बेसुमार बोझ भी 'तारसप्तक' के कवियों और उनके निमित्त से मोड़ लेती हुई नई काव्यचेतना को उठाना पड़ा । नेमिचन्द्र जैन ने स्पष्ट कहा कि "उसके (तारसप्तक के) कवि प्रयोगवादी नहीं थे, शायद उस अर्थ में ही नहीं जो सम्पादक ने पहले अपनी भूमिका में उन पर आरोपित किया - ।" इस प्रकार इस बात का कोई आधार नहीं है कि प्रस्तुत काव्यान्दोलन को प्रयोगवाद के अन्तर्गत जबर्दस्ती ठोक - पीटकर बैठाया जाए । साथ ही हमें यह भी मानना पड़ेगा कि इस सम्बन्ध में अधिकांश सामग्री का प्रकाशन स्तरीय रूप से नहीं हुआ है ।

आखिर इन कविताओं को सम्मिलित रूप में किस नाम से पुकारा जाए? यह प्रश्न अत्यन्त गम्भीर है क्योंकि इसके उत्तर से पूरी की पूरी काव्य - प्रवृत्ति प्रभावित होगी । तब भी बिना किसी विवाद की सृष्टि किए इन कविताओं को नयी कविता की पूर्ववर्ती कविताएँ कहा जा सकता है । इन कविताओं की प्रकृति का अध्ययन करने से इनमें और 'नयी कविता' आन्दोलन की काव्य-चेतना में अन्तर स्पष्ट परिलक्षित हो जाता है, किन्तु यह अन्तर विरोध नहीं है,

हैं, क्योंकि 1943 के आस - पास के संक्रमणकालीन वातावरण की अभिव्यक्ति इन कविताओं में हुई हैं । इस प्रकार की मूल्य संक्रमण प्रस्तुत करने वाली अनेक कविताएँ प्रस्तुत की जा सकती हैं । अतः इन कविताओं को यह नाम देने में कोई हर्ज दिखाई नहीं देता । किन्तु यह नाम देने में हमारा उद्देश्य इस काव्यान्दोलन को किसी भी प्रकार किसी कटघरे में बन्द करना नहीं है और न किसी नये वाद की स्थापना करना है । यहाँ यह नाम निर्धारित करने का उद्देश्य इतना ही है कि इस नाम से एक काल विशेष और स्थिति विशेष की अभिव्यक्ति वाली रचनाओं का बोध हो सके । संक्रमणकाल शब्द किसी फ्रेम की ओर संकेत नहीं करता, बल्कि वातावरण की ओर संकेत करता है, वह वातावरण जो इन कविताओं में मुखर हुआ है, जो इन पर थोपा नहीं गया है । इनके भीतर से ही उगा है । और जो इस काव्यान्दोलन के युगबोधक होने का प्रमाण भी है।

छायावाद के बाद हिन्दी कविता ने जो यात्रा प्रारम्भ की थी वह सन् 1950 - 51 तक आते - आते नयी कविता में ढल गई । चौथे और पाँचवें दशक की कविता में जो प्रयोग चमत्कारी थे, वे छठे दशक की कविता में सहज होने प्रारम्भ हो गए । इसके साथ ही नयी कविता में वह खीझ भी नियन्त्रित हुई जो स्वतन्त्रता से पहले की स्थिति ही खीझ - भरी थी क्योंकि तब हमारे सामने परेशानियाँ ही परेशानियाँ थीं, जबकि स्वतन्त्रता के बाद अपने तन्त्र को अपना कहने का सुख और राष्ट्र - निर्माण की स्वर्णिम आकांक्षा मन में भरी थी । अतः दोनों कालों की कविताएँ कुछ भिन्न चेतना और भंगिमा की हैं ।

किन्तु चेतना और भंगिमा की भिन्नता दोनों कविताओं में किसी प्रकार की दुश्मनी खड़ी नहीं करती, बल्कि विकास - प्रक्रिया को सूचित करती है । अतः यह माना जाना चाहिए कि नयी कविता स्वतन्त्रता के बाद प्रारम्भ हुआ कविता आन्दोलन है जिसके विकास - सूत्र तीसरे - चौथे दशक की कविता तक फैले हुए हैं ।

30.8 सहायक पुस्तकें

1 नयी कविता का इतिहास : डॉ वैजनाथ सिंहल

2 नयी कविता में बिम्ब का वस्तुगत परिप्रेक्ष्य : गोविन्द द्विवेदी

3 नयी कविता की चेतना : जगदीश कुमार

4 नयी कविता की पहचान : राम स्वरूप चतुर्वेदी

5 भारतीय परिवेश और साठोत्तरी कविता : गोविंद रजनीश

NOTES

इकाई 31
प्रयोगवाद और नयी कविता

इकाई की रूपरेखा

31.0 उद्देश्य .....

31.1 प्रस्तावना .....

31.2 नयी कविता

31.3 नई कविता की प्रवृत्तियाँ

31.3.1 विद्रोहात्मक स्वर तथा व्यक्तिवाद की अभिव्यक्ति

31.3.2 लघु मानव की प्रतिष्ठा

31.3.3 अनास्थावादी तथा संशयात्मक स्वरों की अभिव्यक्ति

31.3.4 नग्न यथार्थवाद

31.3.5 वेदना की अनुभूति

31.3.6 क्षणवाद में आस्था

31.3.7 काव्य भाषा में गद्यात्मकता का पुट

31.3.8 बिम्बात्मकता

31.4 निष्कर्ष

31.5 बोध प्रश्न

31.6 नमूने का उत्तर

31.7 सहायक पुस्तकें

31.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में प्रयोगवाद और नयी कविता का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप -

- नयी कविता के तात्पर्य को समझ सकेंगे।
- नयी कविता कि परिभाषाओं की समीक्षा कर सकेंगे।
- प्रयोगवाद और नयी कविता की विभिन्न प्रवृत्तियों को प्रस्तुत कर सकेंगे।

- नयी कविता की प्रारंभिक अवस्था को पहचान सकेंगे।
- नयी कविता के प्रमुख कवियों को जान सकेंगे।

31.1 प्रस्तावना

"नयी कविता" शीर्षक सहसा चोंका देने की प्रवृत्ति का सूचक रहा है । साहित्य शाश्वत नया है, और साहित्य में जो कुछ लिखा जा रहा है - वह नया और पुराना - यह भेद आलोचकों के लिए चर्चित रहा तथा अनेक प्रश्न जन्म लेते रहे । साहित्यकार के द्वारा लिखी जा रही - हर विद्या नया साहित्य है । किंतु नयी कविता अपना विशिष्ट अर्थ प्रतिपादित करती है । नया शब्द उन प्राचीन परम्पराएँ, मान्यताएँ, सीमाएँ तथा मूल्यों का विरोध अथवा संघर्ष आज नहीं, अपितु सृजन के इतिहास में आरंभ से चला आ रहा है । यह संघर्ष नवीनता को खोजने की आकांक्षा का प्रति फल है । हर युग में कवि नूतन भाव, नव नव परिवेश, अभिनव शिल्प तथा नयी शैली की तलाश में रहा है और कुछ न कुछ अन्वेषण कर साहित्य को नवीनता प्रदान करता रहा है । नयी कविता से यह तलाश रुक गई हो या क्रम ठहर गया हो, ऐसी बात नहीं है । यह निरंतन काल से चली आ रही (प्रवृत्ति) प्रवृत्ति सृचन के इतिहास के साथ सर्वदा जुड़ी रहेगी । प्रत्येक नया अन्वेषण नया कहलायेगा इस नयेपन की कोई सीमा नहीं हो सकती है । नयी कविता की तरह 'ताजी कविता', 'प्रतिश्रुत कविता', 'ठोस कविता', 'अकविता', 'अस्वीकृत कविता' वा 'दिंगबर कतिता' आदि अनेक नाम सामने आ चुके और आ रहे हैं ।

'नयी कविता' आज भी पाठक व समीक्षक के लिए विषमता बनी हुई है। इस विषय पर व्यपाक चर्चा हो चुकी हैं, तथा अनेक समीक्षकों द्वारा समीक्षाग्रंथ लिखे जा चुका हैं; किंतु अभी भी इसकी निरचितं परिभाषा नहीं की जा सकी है । डा. नवल किशोर ने 'नयी कविता एक समीक्षक की कठीनाई' शोर्षक लेख में नयी कविता की स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा है - 'नयी कविता' के प्रतिमानों के संबंध में न कोई समान धारणा कवियों में है और न समीक्षकों में नयी कबिता के अंतर्गत अनेक दृष्टियोंवाले कवियों की रचनाएँ आ पाती हैं । काव्य के सृजन और प्रयोजनों के संबंध में इतने अलग-अलग (और परस्पर विरोधी भी) दृष्टिकोण मिलते हैं कि उनके आधार पर कोई सामान्य सिद्धांत स्थिर नहीं किये जा सकते ।"

नई कविता को समझने के लिए कवियोंने अपने कविता-संकलनों की भूमिका में विस्तार से चर्चा की है, विद्वानों में मत भेद के कारण कोई निश्चित परिभाषा सामने न आ सकी ।

31.2 नयी कविता :

नयी कविता के संदर्भ में समिक्षकों के विभिन्न मत हैं । नयी कविता का जन्मदाता 'इलियट' कहा जाता है हिन्दी साहित्य में नयी कविता का प्रवर्त्तक 'अज्ञेय' को स्वीकार किया जाता है । 'अज्ञेय' पर इलियट के जीवन-दर्शन का व्यापक प्रभाव पड़ा । अज्ञेय की कला में निर्वैयक्तीकरण इलियट की ही देन कही जाती है । नयी कविता-निराशा, कुण्ठा, अनास्था, अनस्तित्व, अवसाद आदि तत्वों का समावेश है, जिसमें यह चिंतन धारा न समाज़ के दूर और व्यक्ति के निकट हो चली है । नयी कविता व्यक्तिपरक अनुभूतियों की स्वच्छन्द विवेचना अथवा विसंगतियों की सख्या है । मानव समाज के विविध पहलुओं कों - (राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक आदि) - छोड़कर सृजन मात्र को स्वीकार करनेवाली प्रवृति का नाम 'नयी कविता' है । नयी कविता का जन्म मुक्त चेतना की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था किंतु शनैः शनैः इस धारा के भी मूल्य स्थापित होने लगे और नकारात्मक प्रवृत्ति ने इस धारा को झकझोरा। अतः नयी कविता के संदर्भ में किसी एक निश्चित धारणा को जन्म दे सकें-यह विवादास्पद ही है।

डॉ. रामदशरथ मिश्र ने 'नयी कविता' के संदर्भ में कहा है - 'नयी कविता भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात् लिखी गई उन कविताओं को कहा गया, जिनमें परम्परागत कविता से आगे नये भावबोधों की अभिव्यक्ति के साथ ही नये मूल्यों और नये शिल्प-विधान का अन्वेषण किया गया । यह अन्वेषण साहित्य में कोई नई वस्तु नहीं है । फिर भी नई कविता नाम स्वतंत्रता के पश्चात् लिखी गई उन कविताओं के लिए रूढ़ हो गया, जो अपनी वस्तु-छवि और रूप छवि दोनों में पूर्ववर्ती प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का विकास होकर भी विशिष्ट है ।'

'नई कविता' का रूप बहुत दिनों तक अस्पष्ट-सा रहा। यह तय नहीं हो पाया कि नयी कविता के मूल्य क्या है ? उनकी विशेष्टताएँ क्या हैं और वे कौन-सी ऐसी बातें हैं जो उसे अपने पूर्ववर्ती काव्य से अलगाती हैं । यह कार्य कवियों

को स्वयं करना पड़ा और उन्होंने अपने दृष्टिकोण से नई कविता को परिभाषित करने का प्रयास किया ।

विश्वम्भर 'मानव' ने कहा कि - 'नयी कविता परिस्थितियों की उपज है । हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार-नई कविता आज की मानव विशिष्टता से उद्‌भूत उस लघु परिवेश की अतीव्यक्ति की है जो एक और आज की समस्त तिक्तता और विषमता को तो भोग ही रहा है, साथ ही उन समस्त तिक्तताओं के बीच वह अपने व्यक्तित्व को सुरक्षित रखना चाहता है ।'

डॉ. रामगोपाल 'दिनेश' ने नयी कविता को दो प्रवाहों - 'व्यक्ति निष्ठ और समाज निष्ठ-की कविता माना है ।' डॉ. इन्द्रनाथ मदान के मत से - 'नई कविता का उद्धेश्य जीवन की नवीन परिस्थिति उसके नवीन स्तरों एवं धरातलों का व्यक्ति सत्य की दृष्टि से अभिव्यक्ति देना है ।'

अज्ञेय के शब्दों में - 'नई कविता सबसे पहले एक नई मनः स्थिति का प्रतिबिंब हैं - एक नये मूड़का-एक नये राग सम्बन्ध का ।' डॉ. शम्भुनाथ सिंह के मत से - 'नई कवित में नवीन जीवन मूल्यों की स्थापना का विशेष आग्रह दिखाई पड़ता है ।' बालकृष्ण राव ने नई कविता के स्वर की स्थापना करते हुए कहा है - नई कविता का सच्चा, आधुनिक, स्वस्थ स्वर व्यक्ति का स्वर है, समूह का कोलाहल नहीं, पर उस व्यक्ति के स्वर में ही समूह मुखरित हो उठा है । दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि एक में अनेक की छायावादी कल्पना ने सत्य का रूप नई कविता में ही ग्रहण किया हैं ।

मुक्तिबोध का दृष्टिकोण जहाँ एक ओर कवि का दृष्टिकोण है, वहाँ दूसरी ओर एक वैचारिक का भी है । उनके मत से - 'नई कविता उस प्रकार की आईवरी टावर की रोमाण्टिक स्वप्नशीलता की एकांता प्रिय आत्म-रतिमय आध्यत्मिकता की कविता नहीं हैं, जैसी कि पुराने रोमाण्टिक युग की हुआ करती थी । वह मूलतः एक परिस्थिति के भीतर पलते हुए मानव-हृदय की पर्सनल सिचुएशन की कवित है ।'

नई कविता के स्वरूप को समझा ने का प्रयास करते हुए कवि आलोचक लक्ष्मीकांत वर्मा ने कहा है - 'नये कवि के नयेपन में.....ऐतिहासिक, वैयक्तिक, सामाजिक और आत्म व्यंजक सत्य के वे आयाम और धरातल विकसित हुए हैं

जो अवतरित करते हैं ।' एक अन्य लेखमें वर्माजी ने कहा है - 'नई कविता का मूल वृत्त उन बिन्दुओं का समूह है जिनमें वे सभी तब समन्वित हैं, जो नये सौंदर्य-बोध से विकसित होते हैं ।'

इनके अतिरिक्त रामस्वरूप चतुर्वेदी, धर्मवीर भारती, गिरिजा कुमार माथुर, अजितकुमार तथा रामविलास शर्मा आदि नये कवियों ने भी नई कविता को इन्हीं धारणाओं के अनुकूल पारिभावित किया है । डॉ. रामदशरथ मित्र के शब्दों में - 'नई कविता भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात् लिखी गई उन कविताओं को कहा गया, जिनमें परम्परागत कविता से आगे नये मूल्यों, नये भाव-बोधों और नये शिल्प विधान का अन्वेषण किया गया है ।'

इन सभी परिभाषाओं पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो एक शब्द 'नया' सब में समान रूप से मिलता है । नया शिल्प, नया भावबोध नये मूल्य, नयी परिस्थितियाँ, नये राग-सम्बन्ध नये मूड़ । इन कवियों ने नई कविता को एक अलग भाव भूमि दी ।

किसी कविता का नयी कविता होने से पूर्व कविता होना आवश्यक है । सामान्य रूप से 'प्रयोग' शब्द अँग्रेजी के 'Experiment' का पर्याय है, किंतु हिन्दी में 'प्रयोगवाद' शब्द साहित्य की उस धारा विशेष को सूचित करता है जो आई तो प्रगतिवाद के उपरांत, किंतु उसका जन्म मूलतः छयावाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया-स्वरूप हुआ । प्रयोगवाद के उत्थान के कारण का उल्लेख करते हुए डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है - 'भाव-क्षेत्र में छायावाद की अतीन्द्रियता और वायवी सौंदर्य चेतना के विरुद्ध एक वस्तुगत मूर्त्त एवं ऐन्द्रिय चेतना का विकास हुआ और सौंदर्य की परिधि में केवल मधुर के अतिरिक्त पुरुष, अनपढ़, का समावेश किया ।' यहाँ सौंदर्य के विरुद्ध कुरूपता का ताण्डव देखते हैं । - प्रयोग के प्रति अत्यधिक आग्रह हम सर्वत्र पाते हैं । स्वयं प्रयोगवाद के आविर्भावक अज्ञेयजी के शब्दों में - 'प्रयोग सभी कालों के कवियों ने लिए हैं । किंतु क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी छुआ नहीं गया था जिनको अभेद्य मान लिया गया है ।'

प्रयोगवादी हिन्दी काव्य के संक्षिप्त इतिहास को यदि सरासरी नज़र से देखा जाय तो इसका आरम्भ 'तार सप्तक' के प्रकाशन (1943 A.D.) से माना

जाता है । इनमें सात कवियों की कविताएँ सम्मिलित हैं । ये कवि हैं - गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, डॉ. रामविलास शर्मा तथा सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन 'अज्ञेय' । 'तार सप्तक' के संपादक 'अज्ञेय' जी के ही संपादकत्य में दूसरा सप्तक प्रकाश में आया । इसमें फिर सात कवियों की रचनाएँ संकलित की गई । इन कवियों के नाम हैं - भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादूर सिंह, नरेश कुमार मेहता, रघुवीर सहाय तथा धर्मवीर भारती । इसी सप्तक परम्परा में तीसरा सप्तक भी सन् १९५९ में प्रकाशित हुआ, जिसके संपादक 'अज्ञेय' जी ही थे । इसमें भी सात ही कवियों की रचनाएँ संग्रहीत हैं ।

प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्सायन, केदारनाथ सिंह, कुंवर नारायण, विजयदेव नारायण साही व सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविताएँ संकलित हैं । इन्हीं कविताओं से 'नयी कविता' का आरम्भ हुआ ।'

प्रयोगवाद का ही आधुनिक रूप नई कविता है । इसमें विभिन्न कवियों के अनेक स्वतंत्र कविता संकलन भी प्रकाशित हो चुके हैं । 'अज्ञेय' जी के जो कविता संकलन प्रकाश में आये हैं उनमें 'हरी घस पर क्षण भर' 'बावरा अहेटी', 'इन्द्रधनु रौंदे हुए थे' मुखरित हुआ है । गिरिजा कुमार माथुर के काव्य-संग्रह 'मंजीर' 'नाश और निर्माण', 'शिला पंख चमकीले' तथा 'धूप के धान' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं । धर्मवीर की कविता पुस्तकों में 'ठण्ढा लोहा' तथा 'अन्य कविताएँ', 'अंधा युग', 'कनुप्रिया' तथा 'सात गीत वर्ष मुख्य हैं ।' इन कवियों तथा कविता संकलनों के अतिरिक्त प्रभाकर माचवे के 'अनुक्षण' तथा 'स्वप्न भंग', भारत भूषण अग्रवाल का 'ओ अप्रस्तुत मन', जगदीश गुप्त के 'नाँव के पाँव' तथा 'शब्द देश', कुंवर् नायण का 'चक्रव्यूह' दुष्यन्त कुमार का 'सूर्य का स्वागत', देवराज का 'धरती और स्वर्ग', 'नरेश मेहता' का 'बनपाँखी सुनो', अजित कुमार का 'अकेले कण्ठ की पुकार' कीर्ति चौधुरी' की कविताएँ', आदि कविता संग्रह भी प्रयोगवादी कविता के सुन्दर उदाहरण हैं । 'लक्ष्मीकांत वर्मा', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, बालकृष्ण राव, विजयदेव नारायण साही आदि अन्य भी इस काव्य धारा के प्रमुख कवि हैं । इन कवियों के केवल कविता संकलन ही प्रकाशित नहीं हुए हैं, वरन विभिन्न पत्र-पत्रिकओं में इनकी कविताएँ आये दिने प्रकाशित होती रहती हैं ।

31.3 नई कविता की प्रवृत्तियाँ

हिन्दी कविता आदिकाल, भक्तिकाल तथा रीतिकाव्य की यात्रा करती हुई आधुनिक युग में आकर अनेक रूपों में बँट गई तथा प्रत्येक वर्ग ने अपनी सुविधा के अनुरूप कविता का निर्माण किया । यद्यपि प्रत्येक साहित्यकार काल अथवा किसी एक काल में प्रवाहित होनेवाली विभिन्न काव्य-धाराओं में वस्तु-चयन कथन-भंगिमा, नवीन भाषागत प्रयोगों तथा छंद-अलंकारों के प्रयोग की दृष्टि से विभिन्नताएँ हुआ हीं करती हैं, तथापि परम्परागत काव्य-मूल्यों के प्रति उतना अधिक उपेक्षित दृष्ठिकोण किसी भी काव्यांदोलन के कवियोंने नहीं प्रदर्शित किया, जैसा कि प्रयोगवादी और नई कविता से सम्बन्धित कवियों ने छायावादी काव्यों एवं कवियों के प्रति प्रदर्शित किया है । नई कविता से संबंधित कवियोंने अपने पूर्वकालिन काव्य के सिद्धांत पक्ष, भाव पक्ष, कला-पक्ष - तीनों के प्रति अपना उपेक्षा भाव प्रकट किया है । नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नांकित रहीं हैं -

31.3.1 विद्रोहात्मक स्वर तथा व्यक्तिवाद की अभिव्यक्ति-

नई कविता की प्रवृत्तियों में सर्वप्रथम जिस प्रवृत्तिपर हमारी दृष्टि जाती है, वह है परम्परागत सिद्धातों एवं मान्यताओं के प्रति विद्रोह का स्वर ।यह स्वर इस कविता में एक ओर समाज और परम्परा से अलग होने के रूप में मिलता है और दूसरी ओर आत्मशक्ति के उद्घोष के रूप में । नये कवि अधिकांशतया सामाजिक मान्यताओं का विरोध करते मिलने हैं और इस विरोध का मूल कारण उनके स्थान पर किन्हीं उपयोगी मान्यताओं की स्थापना करना नहीं बल्कि अपने व्यक्तित्व को प्रमाणित करना स्वीकार करने हैं । कवि अज्ञेय कहते हैं कि अपने एकांत व्यक्तित्व को हो सके तो प्रमाणित करें, इसलिए नहीं कि उनके स्थान पर नई एवं उपयोगी मान्यताओं की प्रतिष्ठा हो' ।

भवानी प्रसाद मिश्र की निम्नाकित पंक्तियों में जो उल्लास है, वह परम्परा और रूढ़ि से मुक्ति पाने के लिए हैं-

'ये किसी निश्चित नियम, क्रम भी सरासर सीढ़ियाँ हैं, पाँव रखकर बढ़ रहीं जिसपर कि अपनी पीढ़ियाँ हैं, बिना सीढ़ी के बढेंगे' ।

31.3.2 लघु मानव की प्रतिष्ठा :

इस कविता में मानव की लघुता को प्रमुख स्थान मिला है, किंतु साथ ही उसके व्यक्तित्व तथा सामर्थ्य पर विश्वास और गौरव की भावना प्रकठ हुई है। नई कविता में लघु मानव की ऐसी धारणा को स्थान मिल है, जो इतिहास की गति को एक अप्रत्याशित मोड़ दे सकने की क्षमता की ओर इंगित करती है । उदाहरणार्थ धर्मवीर भारती की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

मैं रथ का टूटा पहिया हूँ
लेकिन मुझे फेंको मत
इतिहासों की सामूहिक गति
सहसा झूठी पड़ जाने पर
क्या जाने
सच्चाई टूटे हुए पहियों का आश्रय ले ।'

इस काव्य में मानव के लघु व्यक्तित्व की उस शक्ति पर गौरव तथा अभिमान की अभिव्यक्ति की गई है जो महत्ता की चरम सीमा का स्पर्श करती है ।

31.3.3 अनास्थावादी तथा संशयात्मक स्वरों की अभिव्यक्ति

डा. शम्भुनाथ चतुर्वेदी ने अनास्था मूलक नई कविता के दो पक्ष स्वीकार किये हैं । एक आस्था और अनास्था की द्वंद्वमयी अभिव्यक्ति जो वस्तुतः निराशा और संशयात्मक दृष्टिकोण का संकेत करती है । दूसरी नितांत हताशपूर्ण मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति । कुण्ठा एक अनास्था मूलक वृत्ति है । धर्मवीर भारती की निम्नांकित पंक्तियों में कुण्ठा-जन्य एक अनास्था मूलक वृत्ति है । धर्मवीर भारती की निम्नांकित पंक्तियों में कुण्ठा जन्य असमर्थता का प्रतिफलन हुआ है -

'अपना कुण्ठाओं की
दीवारों में बन्दी
मैं घुटता हूँ ।'

डा. देवेश ठाकुर ने यह वक्तव्य दिया है कि 'जब उसकी बौद्धिक आस्था ही जीवन के सोपानों पर उसे अग्रसर करने में सहायक न हो सकी, तब उसे और

किसीसे आशा हो सकती थी । 'अपने धोर परम्पराओं के बीच उसकी निराशा बढ़ती चली गई ।'

31.3.4 नग्न यथार्थवाद :

नयी कविता में यथार्थ को नग्न रूप में चित्रित किया है । डॉ. शिवकुमार शर्मा के शब्दों में - इस कविता में दूपित मनोवृत्तियों का चित्रण भी अपनी पराकष्ठा पर पहुँच गया है। जिस वस्तु को एक श्रेष्ठ साहित्यकार, कहानीकार आलोक, ग्राम्य और कुरूप समझकर उसे साहित्य जगत् से बहिष्कृत करता है, प्रयोगवादी कवि इसी के चित्रण में गौरव अनुभव करता है । उसकी कविता का लक्ष्य दमित भावनाओं एवं कुण्ठाओं का चित्रण मात्र रह गया है । काम वासना जीवन का अंग अवश्य है, किंत जब अंग न रहकर अंगी और साधन न रहकर साध्य बन जाती है, तब उसकी विवृत्त एक घोर भयानक विकृति के रूप में होती है । प्रयोगवादी साहित्य में वासना की विवृत्ति इसी उक्त रूप में हुई है ।

नयी कविता के पक्षधरों द्वारा इस तथ्य को यौन-भावना की अकुण्ठ अभिव्यक्ति के रूप में सारहा गया है, किंतु शीलता की दृष्टि से इस प्रकार की उक्तियाँ अमर्यादित कही जाएँगी । उदाहरण के लिए शांता सिंहा की पंक्तियाँ लीजिए-

'आज सुख्य मेहमान तुम
रात के इस फ्लोर शो में
एक बार बस एक बार
अपने तन की छाप छोड़ जाओ मुझ पर ।'

नयी कविता में यौनाकर्षण बौद्धिक जटिलतावाले विशुद्ध मानव का यौनाकर्षण है, वे न तो उसके सहज रूप को किन्हीं आध्यात्मिक शिखरों पर प्रतिष्ठित करने का प्रयासी है और न किसी नैतिकता का आवरण ओढ़ने को तैयार है, न तो नारी को नरक का द्वार मानता है, न स्वर्ग की अप्सरा ।

31.3.5 वेदना की अनुभूति :

नयी कविता में कवि पलायनवादी नहीं है, वह उस वेदना के सान्निर्ध्य को अभिलाषा करता है । इसे उसने दो रूपों में स्वीकार किया है - एक तो वेदना को

सहन करने की लालसा के प्रकटी करण में और दूसरे वेदना या पीड़ा की अतल गहराइयों में बैठकर नए अर्थ की उपलब्दियों के रूप में । भारत भूषण अग्रवाल वेदना को उत्साहवर्धिनी मानते हैं -

'पर न हिम्मत हार ;
प्रज्वलित है प्राण में अब भी व्यथा का दीप
ढाल उसमें शक्ति अपनी
लौ उठा ।'

मुक्तिबोध की मान्यता है कि वेदना अथवा पीड़ा के अवशेष मानव की संघर्ष शक्ति को उभरते हैं ।

31.3.6 क्षणवाद में आस्था :

नयी कविता में क्षण की महता को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । कहने का अभिप्राय यह है कि जीवन का एक सुखद क्षण विशेष, शेष सारे जीवन से अधिक श्रेयस्कर है - जीवन को भविष्य और भूतकाल से शृंखलित करके चलना जीवन में विषमता, अनास्था और निराशा को भरना है, वर्तमान में लिए जानेवाला क्षण शाश्वत है, सनातन है और उसी का मूल महत्व है ।

उदा : - अज्ञेय की ये पंक्तियाँ
'शाश्वत हमारे लिए वही है
अजर अमर है
वेदितव्य अक्षर है ।'

31.3.7 काव्य भाषा में गद्यात्मकता का पुट :

काव्य भाषा और शिल्प के क्षेत्र में नई कविता के कवियों ने काव्य में एक अदृष्टपूर्व क्रांति ला दी है । नई कविता बहुधा ही अतुकांत एवं मुक्त छंदों में लिखी गई हैं, अतः उनमें गद्यात्मकता आ जाने पर दोषारोपण किया है। यदि नई कविता की पाँच छः पंक्तियों को गद्य के ढंग पर एक ही पंक्ति में लिख दिया जाए तो वह गद्यात्मक वाक्य का रूप धारण करती हैं ।

31.3.8 बिम्बात्मकता :

नई कविता में बिम्ब-योजना बड़ी सफलता के साथ की जा रही है । इस कविता के पूर्व और किसी कविना में बिंब तो हैं, किंतु उनका बाहुल्य कम हीं है । बिंब योजना के संबंध में इन कवियों की विशेषता यह है कि इनके बिंब सजीव हैं । यह कलात्मक प्रकृति बिंब मनने योग्य है ।

सूप सूप भर
धूप कनक
यह सूने नभ में गयी बिखर
चौंधिया
बीन रहा है
उसे अकेला एक कुटर'

नई कविता की एक प्रमुख विशेषता है कि वह नए प्रतीकों का अक्षय भण्डार है । इसमें प्राकृतिक, कलात्मक, सांस्कृतिक, सैद्धांतिक तथा सामान्य जीवन के उपकरणों से संबंधित अनेक प्रकार के प्रतीकों की बड़ी ही सबल-सफल योजना की गई है । उदाहरण-स्वरूप हम ले सकते हैं - नारीयों की विवश-असमर्थ दशा को उभारनेवाल द्रौपदी के चीर-हरण का प्रसंग :

'द्रौपदी-सी चीखती है नारियाँ निर्वस्त्र
जिनके चीर दुःशासन कहीं पर
फेंक आया खींचकर ।'

इन कवियो ने पुराने उपमानों का परित्याग किया । इनके प्रायः सभी उपमान नये हैं । इनके अप्रसुत-विधान की विशेषता यह है कि वे जीवन से लिये गये है । प्रभाकर माचवे की ये पंक्तियाँ -

'नीन-तेल लकड़ीकी फिक्र में लगे घुन से,
मकड़ी के जाल से, कोलहू के बैल से ।'

उपमान की नवीनता मुक्तिवोध की इन पंक्तियों में [illegible] सकते हैं । इनमें उन्होंने नेत्रों के लिए, पावों के लिए नये उपमानों को [illegible] है -

धर्मवीर भारती की निम्नांकित पंक्तियों में कुण्ठा जन्य असमर्थता का प्रतिफलन हुआ है -

'अपना कुण्ठाओं की
दोवारां में बन्दी
म घुटता हूँ ।'

डॉ. देवेश ठाकुर ने यह वक्तव्य दिया है कि 'जब उसकी बौद्धिक आस्था ही जीवन के सोपानों पर उसे अग्रसर करने में सहायक न हो सकी, तब उसे और किसीसे आशा हो सकती थी । 'अपने घोर परम्पराओं के बीच उसकी निराशा बढ़ती चली गई ।'

नग्न यथार्थवाद :

नयी कविता में यथार्थ को नग्न रूप में चित्रित किया है । डॉ. शिवकुमार शर्मा के शब्दों में - 'इस कविता में दूषित मनोवृत्तियों का चित्रण भी अपनी पराकष्ठा पर पहुँच गया है। जिस वस्तु को एक श्रेष्ठ साहित्यकार, कहानीकार आलोक, ग्राम्य और कुरूप समझकर उसे साहित्य जगत् से बहिष्कृत करता है, प्रयोगवादी कवि इसी के चित्रण में गौरव अनुभव करता है । उसकी कविता का लक्ष्य दमित भावनाओं एवं कुण्ठाओं का चित्रण मात्र रह गया है । काम वासना जीवन का अंग अवश्य है, किंत जब अंग न रहकर अंगी और साधन न रहकर साध्य बन जाती है, तब उसकी विवृत्त एक घोर भयानक विकृति के रूप में होती है । प्रयोगवादी साहित्य में वासना की विवृत्ति इसी उक्त रूप में हुई है ।

नयी कविता के पक्षधरों द्वारा इस तथ्य को यौन-भावना की अकुण्ठ अभिव्यक्ति के रूप में सारहा गया है, किंतु शीलता की दृष्टि से इस प्रकार की उक्तियाँ अमर्यादित कही जाएँगी । उदाहरण के लिए शांता सिंहा की पंक्तियाँ लीजिए-

'आज सुख्ख मेहमान तुम
रात के इस फ्लोर शो में
एक बार बस एक बार
अपने तन की छाप छोड़ जाओ मुझ पर ।'

'अन्तर्मनुष्य
रिक्त-ला गेह
दो लालटेन से नयन
निष्प्राण स्तम्भ
दो खड़े पाँव ।'

नई कविता में छंद विधान के प्रति उपेक्षा भरित दृष्टि अपनायी गई है । नये कवियों ने छंद विधान में आमूल परिवर्तन किया है । अंग्रेजी, उर्दू, आदि भाषाओं के छंद अपनाये गये हैं, मुक्त छंद भी द्रष्टव्य है । मुक्त छंद का रचना-विधान गद्य के समान ही दिखता है ।

31.4 निष्कर्ष

नई कविता नितांत आधुनिक है । आधुनिकतम होना उसकी अनिवार्य शर्त है।

नई कविता मे सामान्य वस्तुओं तथा अकिंचन परिस्थितियों से रागात्मक संबंध होना जरूरत

नई छंद-योजना, शब्दों के ध्वन्यात्मक प्रयोग तथा आंतरिक अर्थों का समन्वय भी

नई कविता का धरातल पर्याप्त मात्रा तक बौद्धिक है । वर्त्तमान में असंतोष, भविष्य में आस्था । नई कविता गद्य कविता है । उसमें जीवन की स्वाभाविय भाषा का प्रयोग हो रहा है ।

डा. जगदीश गुप्त 'अर्थ की लय' नई कविता की अनिवार्य वस्तु मानते हैं।

नये कवि एवं समीक्षक कहते हैं कि नई कविता का विकास अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर चल रहा है ।

नयी कविता के कुछ कवि अपनी अनुभूतियों के प्रति पर्याप्त ईमानदार है।

एकांत व्यक्तित्व को हो सके तो प्रमाणित क., इसलिए नहीं कि उनके स्थान पर नई एवं उपयोगी मान्यताओं की प्रतिष्ठा हो' ।

भवानी प्रसाद मिश्र की निम्नाकित पंक्तियों में जो उल्लास है, वह परम्परा और रूढ़ि से मुक्ति पाने के लिए हैं-

'ये किसी निश्चित नियम, क्रम भो सरासर सीढ़ियाँ हैं, पाँव रखकर बढ़ रहीं जिसपर कि अपनी पीढ़ियाँ हैं, बिना सीढ़ी के बढेंगे' ।

लघु मानव की प्रतिष्ठा

इस कविता में मानव की लघुता को प्रमुख स्थान मिला है, किंतु साथ ही उसके व्यक्तित्व तथा सामर्थ्य पर विश्वास और गौरव की भावना प्रकठ हुई है । नई कविता में लघु मानव की ऐसी धारणा को स्थान मिल है, जो इतिहास की गति को एक अप्रत्याशित मोड़ दे सकने की क्षमता की ओर इंगित करती है । उदाहरगार्थ धर्मवीर भारती की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

मैं रथ का ट्टा पहिया हूँ
लेकिन मुझे फेंको मत
इतिहासों की सामूहिक गति
सहसा झूठी पड़ ज्ञाने पर
क्या जाने
सच्चाई टूटे हुए पहियों का आश्रय ले ।'

इस काव्य में मानव के लघु व्यक्तित्व की उस शक्ति पर गौरव तथा अभिमान की अभिव्यक्ति की गई है जो महत्ता की चरम सीमा का स्पर्श करती है ।

अनास्थावादी तथा संशयात्मक स्वरों की अभिव्यक्ति

डॉ. शम्भुनाथ चतुर्वेदी ने अनास्था मूलक नई कविता के दो पक्ष स्वीकार किये हैं । एक आस्था और अनास्था की द्वंद्वमयी अभिव्यक्ति जो वस्तुतः निराशा और संशयात्मक दृष्टिकोण का संकेत करती है । दूसरी नितांत हताशपूर्ण मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति । कुण्ठा एक अनास्था मूलक वृत्ति है । धर्मवीर भारती की निम्नांकित पंक्तियों में कुण्ठा-जन्य एक अनास्था मूलक वृत्ति है ।

संबंध में न कोई समान धारणा कवियों में है और न समीक्षकों में नयी कविता के अंतर्गत अनेक दृष्टियोंवाले कवियों की रचनाएँ आ पाती हैं । काव्य के सृजन और प्रयोजनों के संबंध में इतने अलग-अलग (और परस्पर विरोधी भी) दृष्टिकोण मिलते हैं कि उनके आधार पर कोई सामान्य सिद्धांत स्थिर नहीं किये जा सकते ।"

नई कविता को समक्षने के लिए कवियोंने अपने कविता-संकलनों की भूमिका में विस्तार से चर्चा की है, विद्वानों में मत भेद के कारण कोई निश्चित परिभाषा सामने न आ सकी ।

नई कविता की प्रवृत्तियाँ

हिन्दी कविता आदिकाल, भक्तिकाल तथा रीतिकाव्य की यात्रा करती हुई आधुनिक युग में आकर अनेक रूपों में बँट गई तथा प्रत्येक वर्ग ने अपनी सुविधा के अनुरूप कविता का निर्माण किया । यद्यपि प्रत्येक साहित्यकार काल अथवा किसी एक काल में प्रवाहित होनेवाली विभिन्न काव्य-धाराओं में वस्तु-चयन कथन-भंगिमा, नवीन भाषागत प्रयोगों तथा छंद-अलंकारों के प्रयोग की दृष्टि से विभिन्नताएँ हुआ हीं करती हैं, तथापि परम्परागत काव्य-मूल्यों के प्रति उतना अधिक उपेक्षित दृष्ठिकोण किसी भी काव्यांदोलन के कवियोंने नहीं प्रदर्शित किया. जैसा कि प्रयोगवादी और नई कविता से सम्बन्धित कवियों ने छायावादी काव्यों एवं कवियों के प्रति प्रदर्शित किया है । नई कविता से संबंधित कवियोंने अपने पूर्वकालिन काव्य के सिद्धांत पक्ष, भाव पक्ष, कला-पक्ष - तीनों के प्रति अपना उपेक्षा भाव प्रकट किया है । नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ निम्नांकित रहीं हैं -

विद्रोहात्मक स्वर तथा व्यक्तिवाद की अभिव्यक्ति-

नई कविता की प्रवृत्तियों में सर्वप्रथम जिस प्रवृत्तिपर हमारी दृष्टि जाती है, वह है परम्परागत सिद्धातों एवं मान्यताओं के प्रति विद्रोह का स्वर ।यह स्वर इस कविता में एक ओर समाज और परम्परा से अलग होने के रूप में मिलता है और दूसरी ओर आत्मशक्ति के उद्घोष के रूप में । नये कवि अधिकांशतया सामाजिक मान्यताओं का विरोध करते मिलने हैं और इस विरोध का मूल कारण उनके स्थान पर किन्हीं उपयोगी मान्यताओं की स्थापना करना नहीं बल्कि अपने व्यक्तित्व को मण्डित करना स्वीकार करने हैं । कवि अज्ञेय कहते हैं कि अपने

नयी कविता में यौनाकर्षण बौद्धिक जटिलतावाले विशुद्ध मानव का यौनाकर्षण है, वे न तो उसके सहज रूप को किन्हीं आध्यात्मिक शिखरों पर प्रतिष्ठित करने का प्रयासी है और न किसी नैतिकता का आवरण ओढ़ने को तैयार है, न तो नारी को नरक का द्वार मानता है, न स्वर्ग की अप्सरा ।

वेदना की अनुभूति :

नयी कविता में कवि पलायनवादी नहीं है, वह उस वेदना के सान्निध्य को अभिलाषा करता है । इसे उसने दो रूपों में स्वीकार किया है - एक तो वेदना को सहन करने की लालसा के प्रकटी करण में और दूसरे वेदना या पीड़ा की अतल गहराइयों में बैठकर नए अर्थ की उपलब्दियों के रूप में । भारत भूषण अग्रवाल वेदना को उत्साहवर्धिनी मानते हैं -

'पर न हिम्मत हार ;
प्रज्वलित है प्राण में अब भी व्यथा का दीप
ढाल उसमें शक्ति अपनी
लौ उठा ।'

मुक्तिबोध की मान्यता है कि वेदना अथवा पीड़ा के अवशेष मानव की संघर्ष शक्ति को उभरते हैं ।

क्षणवाद में आस्था :

नयी कविता में क्षण की महता को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । कहने का अभिप्राय यह है कि जीवन का एक सुखद क्षण विशेष, शेष सारे जीवन से अधिक श्रेयस्कर है - जीवन को भविष्यं और भूतकाल से शृंखलित करके चलना जीवन में विषमता, अनास्था और निराशा को भरना है, वर्तमान में लिए जानेवाला क्षण शाश्वत है, सनातन है और उसी का मूल महत्व है ।

उदा : - अज्ञेय की ये पंक्तियाँ
'शाश्वत हमारे लिए वही है
अजर अमर है
वेदितव्य अक्षर है ।'

31.5 बोध प्रश्न

1 नयी कविता की परिभाषा देते हुए उसकी प्रमुख प्रवृत्तियोंका विश्लेषण कीजिए।

2 प्रयोगवाद और नयी कविता पर एक निबंध लिखिए।

31.6 नमूने का उत्तर

1 नयी कविता की परिभाषा देते हुए उसकी प्रमुख प्रवृत्तियोंका विश्लेषण कीजिए।

उत्तर - " नयी कविता " शीर्षक सहसा चोंका देने की प्रवृत्ति का सूचक रहा है। साहित्य शाश्वत नया है, और साहित्य में जो कुछ लिखा जा रहा है - वह नया और पुराना - यह भेद आलोचकों के लिए चर्चित रहा तथा अनेक प्रश्न जन्म लेते रहे । साहित्यकार के द्वारा लिखी जा रही - हर विद्या नया साहित्य है । किंतु नयी कविता अपना विशिष्ट अर्थ प्रतिपादित करती है । नया शब्द उन प्राचीन परम्पराएँ, मान्यताएँ, सीमाएँ तथा मूल्यों का विरोध अथवा संघर्ष आज नहीं, अपितु सृजन के इतिहास में आरंभ से चला आ रहा है । यह संघर्ष नवीनता को खोजने की आकांक्षा का प्रति फल है । हर युग में कवि नूतन भाव नव नव परिवेश, अभिनव शिल्प तथा नयी शैली की तलाश में रहा है और कुछ न कुछ अन्वेषण कर साहित्य को नवीनता प्रदान करता रहा है । नयी कविता से यह तलाश रुक गई हो या क्रम ठहर गया हो, ऐसी बात नहीं है । यह निरंतन काल से चली आ रही (प्रवृत्ति) प्रवृत्ति सृचन के इतिहास के साथ सर्वदा जुड़ी रहेगी । प्रत्येक नया अन्वेषण नया कहलायेगा इस नयेपन की कोई सीमा नहीं हो सकती है । नयी कविता की तरह 'ताजी कविता', 'प्रतिश्रुत कविता', 'ठोस कविता', 'अकविता', 'अस्वीकृत कविता' वा 'दिंगबर कविता' आदि अनेक नाम सामने आ चुके और आ रहे हैं ।

'नयी कविता' आज भी पाठक व समीक्षक के लिए विषमता बनी हुई है । इस विषय पर व्यपाक चर्चा हो चुकी हैं, तथा अनेक समीक्षकों द्वारा समीक्षाग्रंथ लिखे जा चुका हैं; किंतु अभी भी इसकी निरचितं परिभाषा नहीं की जा सकी है । डा. नवल किशोर ने 'नयी कविता एक समीक्षक की कठीनाई' शीर्षक लेख में नयी कविता की स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा है - 'नयी कविता' के प्रतिमानों के

काव्य भाषा में गद्यात्मकता का पुट :

काव्य भाषा और शिल्प के क्षेत्र में नई कविता के कवियों ने काव्य में एक अदृष्टपूर्व क्रांति ला दी है । नई कविता बहुधा ही अतुकांत एवं मुक्त छंदों में लिखी गई हैं, अतः उनमें गद्यात्मकता आ जाने पर दोषारोपण किया है। यदि नई कविता की पाँच छः पंक्तियों को गद्य के ढंग पर एक ही पंक्ति में लिख दिया जाए तो वह गद्यात्मक वाक्य का रूप धारण करती हैं ।

बिम्बात्मकता :

नई कविता में बिम्ब-योजना बड़ी सफलता के साथ की जा रही है । इस कविता के पूर्व और किसी कविता में बिंब तो हैं, किंतु उनका बाहुल्य कम हीं है । बिंब योजना के संबंध में इन कवियों की विशेषता यह है कि इनके बिंब सजीव हैं । यह कलात्मक प्रकृति बिंब मनने योग्य है ।

सूप सूप भर
धूप कनक
यह सूने नभ में गयी बिखर
चौंधिया
जी रहा है
उसे अकेला एक कुटर'

नई कविता की एक प्रमुख विशेषता है कि वह नए प्रतीकों का अक्षय भण्डार है । इसमें प्राकृतिक, कलात्मक, सांस्कृतिक, सैद्धांतिक तथा सामान्य जीवन के उपकरणों से संबंधित अनेक प्रकार के प्रतीकों की बड़ी ही सबल-सफल योजना की गई है । उदाहरण-स्वरूप हम ले सकते हैं - नारीयों की विवश-असमर्थ दशा को उभारनेवाल द्रौपदी के चीर-हरण का प्रसंग :

'द्रौपदी-सी चीखती है नारियाँ निर्वस्त्र
जिनके चीर दुश्शासन कहीं पर
फेंक आया खींचकर ।'

इन कवियो ने पुराने उपमानों का परित्याग किया । इनके प्रायः सभी उपमान नये हैं। इनके अप्रसुत-विधान की विशेषता यह है कि वे जीवन से लिये गये है । प्रभाकर माचवे की ये पंक्तियाँ -

'नीन-तेल लकड़ीकी फिक्र में लगे घुन से,
मकड़ी के जाल से, कोलहू के बैल से !'

उपमान की नवीनता मुक्तिबोध की इन पंक्तियों में हम देख सकते हैं । इनमें उन्होंने नेत्रों के लिए, पावों के लिए नये उपमानों को गढ़ा है -

'अन्तर्मनुष्य
रिक्त-ला गेह
दो लालटेन से नयन
निष्प्राण स्तम्भ
दो खड़े पाँव ।'

नई कविता में छंद विधान के प्रति उपेक्षा भरित दृष्टि अपनायी गई है । नये कवियों ने छंद विधान में आमूल परिवर्तन किया है । अंग्रेजी, उर्दू, आदि भाषाओं के छंद अपनाये गये हैं, मुक्त छंद भी द्रष्टव्य है । मुक्त छंद का रचना-विधान गद्य के समान ही दिखता है ।

31.7 सहायक पुस्तकें

1 नयी कविता का इतिहास : डॉ वैजनाथ सिंहल
2 नयी कविता में बिम्ब का वस्तुगत परिप्रेक्ष्य : गोविन्द द्विवेदी
3 नयी कविता की चेतना : जगदीश कुमार
4 नयी कविता की पहचान : रामस्वरूप चतुर्वेदी
5 हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तिया : डॉ शिवकुमार शर्मा

NOTES

इकाई 32
अज्ञेय और मुक्तिबोध की कविताओं का विश्लेषण

इकाई की रूपरेखा

32.0 उद्देश्य

32.1 प्रस्तावना

32.2 सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन 'अज्ञेय' जन्म १९११ स. ई.

32.3 रचनाएँ

32.4 अज्ञेय और उनका काव्य

32.5 व्याख्या-भाग

32.6 ' मुक्तिबोध '

32.7 मुक्तिबोध की कृतियाँ

32.8 बोध प्रश्न

32.9 नमूने का उत्तर

32.10 सहायक पुस्तकें

32.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में अज्ञेय और मुक्तिबोध की कविताओं का विश्लेषण करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- अज्ञेय का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे।
- अज्ञेय के रचना संसार से अवगत हो जाएँगे।
- अज्ञेय की कविताओं की विशेषताओं को प्रस्तुत कर सकेंगे।
- मुक्तिबोध का जीवन परिचय प्राप्त करेंगे।
- मुक्तिबोध की रचनाओं का विवेचन कर सकेंगे।
- मुक्तिबोध की काव्य कला को समझ सकेंगे।

32.1 प्रस्तावना

हिन्दी नयी कविता के प्रमुख हस्ताक्षर सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन अज्ञेय और गजानन माधव मुक्तिबोध ने नयी कविता का क्षेत्र में अपनी रचनाओं के द्वारा एक नया परिवर्तन ही कर दिया। कविता कामिनी बंधन मुक्त होकर बाहर आई। अज्ञेय और मुक्तिबोध की कविताएँ नयी सोच के लिए मजबूर करती हैं।

32.2 सच्चिदानंद हीरानंद वात्सायन 'अज्ञेय' जन्म १९११ स.ई.

आधुनिक हिन्दी काव्य, कथा साहित्य और निबंध साहित्य को अपने प्रखर प्रयोगवादी व्यक्तित्व से नये सांचे में ढालनेवाले अज्ञेयजी का पूरा नाम सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्सायन है । 'अज्ञेय' इनको प्रसिद्ध कथाकार जैनेंद्र द्वारा दिया गया उपनाम और उसी नाम से प्रख्यात हो गये । हिन्दी साहित्य के इतिहास में अनेक दृष्टियों से इनका व्यक्तित्व और कृतित्व अत्यधिक महात्वपूर्ण माना जाता है । जीवनी-प्रधान व्यक्ति-चेतना से समन्वित मनोविश्लेषणवादि उपन्यास-साहित्य के भी अग्रणी हैं । एक कुशल संपादक होने के साथ-साथ अज्ञेयजी एक कुशल मनोवैज्ञानिक कहानीकार भी हैं और निबंध साहित्य को भी उन्होंने नये मूल्य तथा मान प्रदान किए हैं । इस प्रकार साहित्य की विभिन्न विधाओं को नव्यता प्रदान करके भी आरंभ में इन्हें अनेक प्रकार के आक्षेपों एवं उपेक्षाओं का सामना करना पड़ा, पर आज हिन्दी का विधात्मक साहित्य जिन संचरणों में व्यतीत हो रहा है, उनमें इनकी उपेक्षा कर पाना तो नितांत असम्भव हो गया है, इनका महत्व अत्यधिक बढ़ गया है ।

अज्ञेयजी ने जन्म से क्रांतिकारी विचारों के संवाहक और साथ में क्रांतिकार मशाल लेकर देश के समस्त आन्दोलनों तथा इस मुल्क के सुख दुःख के साथ संवेदनाशील रहकर अपने साहित्य का प्रणयन किया है । यही कारण है कि छायावादी रोमान्स, सतरंगी कल्पना की उडान नक्षत्र लोक का चित्रमय वर्णन इनके काव्य में नहीं है, अपितु अपने समाज के जीवन मूल्यों के प्रति इनका काव्य सदा आस्थावान् रहा है । अपनी सृजनशील प्रतिभा से अज्ञेयजी ने छायावादोत्तर युग में नई चिंतन धारा का सूत्रपात किया, विभिन्न धरातलों पर सोचनेवाले नाना कवि-लेखकों का संघटन किया, उनको अपनी अपनी मंज़िलों को तय करने की स्वतंत्रता देकर भी समाज और लेखन के प्रति प्रतिबद्धता जगाकर बदलते

मूल्यों और संकीर्ण समस्याओं पर तीव्र आस्थावान होकर चिंतन-मनन करने की प्रेरणो दी । इतना ही नहीं स्वयं उन सब के अग्रणी हिन्दी साहित्य में प्रयोगवादी नई कविता का शंखनाद किया ।

अज्ञेयजी का जन्म सन् १९११ में उत्तर प्रदेशस्थित जिला गोरखपुर के कालिया नामक स्थान पर हुआ था । इनके पिता पण्डित हीरानन्द शास्त्रीजी स्वभाव से कुछ तीखे आत्म गौरव के भाव से सम्पन्न थे और वे पुरातत्व विभाग में कार्य करते थे, अतः आर्थिक विपन्नता का कोई प्रश्न या समस्या इनके सामने नहीं थी । खुदाई के दौरों पर जब कभी विभिन्न स्थानों पर पण्डित जी जाते थे, तब अपने परिवार को भी साथ ले जाया करते थे । परिणम स्वरूप बचपन के दिनों से देश के विभिन्न भागों में, भ्रमण करने का अवसर अज्ञेयजी को मिला। जहाँ तक शिक्षा-दीक्षा का प्रश्न है, उनकी प्रारंभिक शिक्षा की व्यवस्था घर पर ही की गई थी । उसके पश्चात् मैट्रिक परीक्षा इन्होंने मद्रास में रहकर उत्तीर्ण की और आगे बी.एस.सी. की परीक्षा पंजाब विश्वविद्यालय लाहोर में उत्तीर्ण की । आगे अंग्रेजी में एम.ए. करना चाहते थे, कोई डेढ़ वर्ष तक इसकी तैयारी भी करते रहे, पर परीक्षा में बैठने का अवसर प्राप्त न हो सका । इसका कारण था इनके विचारों की क्रांतिकारि और कांतिकारियों के आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेना। इस कारण इन्हें एम.ए. परिक्षा में बैठने से पूर्व ही गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया गया ।

अज्ञेयजी का क्रांतिकारी जीवन सन् १९२९ से शुरू होता है । सन् १९२९ से लेकर ई. तक इनका जीवन क्रांतिकारी का जीवन रहा है । भगतसिंह को जेल से छुडाने की योजना, दिल्ली हिमालयन टायलेटस फेक्टरी की स्थापना करके वैज्ञानिक सलाहकार के रूप में नौकरी करते बम बनाने की योजना, इस प्रकार का प्रयत्न जब की १९३० में अमृतसर में हुआ तब गिरफ्तार हो जाना-ये सब उनके क्रांतिकारी जीवन के महत्वपूर्ण बिन्दु हैं - जेल जाना इनके लिए एक प्रकार से वरदान सी प्रमाणित हुआ, क्यों कि साहित्यकार के रूप में आज जो इनका स्थान और महत्व है, उसका शुभारम्भ कारावासकाल में ही हुआ । जेल के दिनों का अपना अधिक समय अध्ययन, चिंतन मनन में बिताया । इस आत्म-मन्थन ने उन्हें नया जीवन दिया। अज्ञेय विद्यार्थी जीवन से ही गम्भीर अध्येता थे। अपने कालेज-जीवन में प्रो.जे.वी. बनेड, प्रो. डेनियल जैसे विद्वानों के सम्पर्क में आए । विभिन्न धर्मो का तुलनात्मक अध्ययन किया।

अनेक हिन्दी लेखकों की दृष्टि में अज्ञेय भारतीय होते हुए भी विदेशी हैं, इनकी राष्ट्रीयता पर ही प्रश्न चिह्न लगाए गए थे । किंतु असल बात तो यह है कि भारत के प्रति इतना प्रेम है कि अपनी जिन्दगी भर भारतीय चिंतनधारा और यहाँ के जीवन-मूल्यों का व्यापक प्रचार इन्होंने किया है । इनकी रचनाओं में यहाँ की संस्कृति मूल्य स्पष्ट प्रतिपादित हुए हैं। अँग्रेजी भाषा के संबंध में उनका यहाँ तक कहना है कि अँग्रेजी कभी भी भारत भाषा नहीं थी ।

ग्यारह वर्ष की आयु में उन्होंने "गंगा-स्तुति" रच डाली। इन्हीं दिनों "आनंद' बंधु" नामक एक हस्तलिखित पत्र भी प्रकाशित किया । संस्कृत और हिन्दी छंदों का भी इन्हें ज्ञान हो गया था और उनमें अनेक कविताएँ भी रची थी । लाहौर का लेज-पत्रिका में इनकी कविताएँ प्रकाशित होने लगी थी और उन्होंने कवीन्द्र रवींद्र की "गीताँजली" से प्रभावित होकर अनेक रहस्यवादी गीत भी रचे जो अप्रकाशिन ही हैं । लेखकीय तत्व इनके शैशवी-सुकुमार क्षणों से ही इनके व्यक्तित्व में विद्यमान थे, पर इनका वास्तविक और प्रगट प्रतिफलन कारावास के प्रवास काल में ही हुआ । अतः इनके रचना-काल के प्रारंभ को सन् १९३०-३९ से ही मानना चाहिए ।

अज्ञेयजी भारतीय पत्रकारिता के आधारस्तम्भों में से हैं। अनेक पत्रिकाएँ संपादित हैं । हिन्दी की ख्यात पत्रिका "दिनमान" के संपादक के रूप में १९३४ से १९३७ तक कार्य किया । 'नवभारत टाइम्स' दैनिक का संपादन भी किया । जोधपुर विश्वविद्यालय में तुलनात्मक साहित्य विभाग के निर्देशक के रूप में अज्ञेयजी कार्य कर रहे थे । हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 'साहित्य वाचस्पति' की और १९७२ में विक्रम विश्वविद्यालय ने डी. लिट की मदान उपाधि से सम्मान किया । इनके कविता-संग्रह "अँगन के पार द्वार पर" को १९३४ का केन्द्रीय साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ है ।

सन् १९७९ मैं इनके 'कितनी नावों में कितनी बार' नामक कविता संग्रह के लिए भारतीय ज्ञनपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ। ४ अप्रैल १९८७ को अज्ञेयजी का आकस्मिक निधन हो गया । इससे हिन्दी जगत को अपार क्षति हुई । अज्ञेयजी ने अपनी लेखनी से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया । उनकी साहित्य साधना की अमिट छाप सदैव हिन्दी साहित्य पर रहेगी ।

व्यक्तिगत जीवन में अज्ञेयजी विषकंठ थे । उनका भोगा हुआ व्यापक जीवन उनकी लेखनी से कभी कहानी, कभी उपन्यास, कभी काव्य के रूप में सामने आया है । लेखन कार्य को विवशता या मजबूरी मानते हुए अज्ञेयजी कहते हैं, "लिखकर ही लेखक उस अभ्यांतर विवशता को पहचानता है, जिसके कारण उसने लिखा । मैं भी उस आन्तरिक विवशता से मुक्ति पाने के लिए, तटस्थ होकर उसे देखने और पहिचानने के लिए लिखता हूँ ।"

32.3 रचनाएँ - अज्ञेयजी का रचना संसार विशाल है । व्यक्ति, समाज, दर्शन, विज्ञान, पीड़ा, सुख, प्रेम, प्रकृति, सौंदर्य-ये सब अज्ञेय के रचनालोक में अपनी गरिमा के साथ अभिव्यक्त हुए हैं । ६० से अधिक ग्रन्थ अब तक प्रकाशित हुए हैं - कविता संग्रह - भग्नदूत (१९३३) चिन्ता (१९४२), इत्यलम् (१९४६), हरी घास पर क्षण भर (१९४६), इन्द्र धनु रौंदे हुए थे (१९४७), अरी ओ करुणा प्रभामय (१९४९), आंगन के द्वार (१९६९), कितनी नावों में कितनी बार (१९६१), क्योकि मैं उसे जानता हूँ (१९६९), पहले मैं सन्नाटा बुनाता हूँ (१९७४) ।

उपन्यास :

शेखर एक जीवनी-दो भागों में (१९४१-१९४४), नदी के दीप (१९४२), अपने अपने अजनबी (१९६१) ।

कथा संग्रह :

विपथगा (१९३७), शरणार्थी (१९४८), जयढोल (१९४१), ये तेरे प्रतिरूप (१९६९), संपूर्ण कहानियाँ : दो भाग (१९७५)

निबन्ध और पत्र त्रिशंकु (1945), सबरंग (1946), आत्मनपद (1960), सबरंग और कुछ राग (1969), अलवाला (1971), लिखी कागज कोरे (1972), अद्यतन (1977), जोग लिसी (1977), संवत्सर (1978), अपेक्षा (1979), स्मृति लेखा (1982), कहा है द्वारका (1962), छाया का जंगल (1985), याता साहित्य - अरे यायावर, रहेगा याद (1953), एक बूँद सहसा ऊचली (1960) ।

डायरी : भवांति (1972, 1982, अंतरा (1975), सास्वती (1979) ।

नाटक : उत्तर प्रियदर्शी (1967) ।

अनुवाद : आज्ञवो एंड्रिक का हैं वी जो अर्स एलिफेंट' रोमा रोला का, स्वीन्द्रनाथ टेगोर के 'गोरा' का बंगाली से हिन्दी।

संपादन : होखती सारक ग्रंथ, रुपाबरा, पुष्करिणी, तार सप्तक, दूसरा सप्तक, तीसरा सप्तक ।

आत्म चिंतन तथा सत्यान्वेषण अज्ञेयजी के स्वभाव के दो पहलू हैं । इन दोनों ने इनको गंभीर चिंतक बना दिया है। दुःख को अभिशाप नहीं अपितु वरदान के रूप में स्वीकार करके दुःख के द्वारा जीवन की विराटता को देखने की प्रवृत्ति इनकी रही है । जीविका के लिए कभी भी व्यवस्था से समझौता न करने के अपने सहज स्वभाव के कारण ही वे जिन्दगी भर एक स्थान पर, एक पद पर स्थिर नहीं रहें । अपने जीवन की भटकन, पीड़ा, संघर्ष के बावजूद भी जीवन के प्रति इनका अटूट विश्वास जैसा का तैसा ही रहा था । पलायनवादी दृष्टि इनकी कभी नहीं रही अनास्थावादी ये कभी नहीं रहे । यही कारण है की इनकी रचनाओं का मूल्य अक्षुण्ण रहा है ।

32.4 अज्ञेय और उनका काव्य :

कवि के रूप में अज्ञेयजी का महत्व एक युग प्रवर्तक के रूप में स्वीकारा जाता है । अज्ञेय प्रारंभ में प्रयोगवादी कवि रहे किंतु 'तारसप्तक' की कविताओं के साथ 'नयी कविता' के युग में प्रवेश किया । 'नयी कविता' के प्रवर्तक के रूप में ख्याति भी अर्जित की । अज्ञेयजी के संदर्भ में कहा गया है - 'अज्ञेय में संवेदना के साथ एक सजग बौद्धिकता है । यह बौद्धिकता उनकी संवेदना को नियंत्रित तो करती है, साथ ही कभी नवीन सूक्तियों के रूप में, कभी व्यंग्य के रूप में भी, व्यक्त होती है, जो संवेदना या अनुभूति से अंतरंग भाव से जुड़ी न होने के कारण बिम्ब रचना के बावजूद बहुत दूर तक प्रभावित हो जाती' । अज्ञेयजी की कविताओं में निर्वैयक्तिकता स्पष्टतः परिलक्षित होता है नकारात्मक स्थिति से अलग रहकर पीछे की ओर मुड़कर देखने की आस्था है, समाज का यथार्थ चित्रण करने में व्यंग्य शैली को स्वीकार किया है । कवि ने नये छन्द, नये प्रयोग व नये शब्द को प्रदान किये हैं । शिल्प की दृष्टि से 'नयी कविता' के क्षेत्र में अज्ञेयजी का नाम महत्वपूर्ण है ।

अज्ञेयजी के अनेक काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं और प्रायः सभी का हिन्दी कविता के पाठकों ने स्वागत किया है । उनके कुछ काव्य-संग्रह निम्नांकित हैं ।

1) भग्नदूत : काल क्रम की दृष्टि से सन् १९३३ में प्रकाशित 'भग्नदूत' इनका प्रारम्भिक काव्य-संग्रह है । इस पर छायावादी काव्य-चेतनाओं का प्रभाव अत्यंत स्पष्ट है । इनमें अपनी किशोरावस्था की रोमांटिक अनुभूति को अपनी वाणी से मुखरित किया है । एक आलोचक के शब्दों में 'भग्नंदूत शीर्षक तरुण वय के उस सुखद आत्मपीड़न की वह एक बहुत बड़े उद्धेश्य के लिए अवतरित हुआ था । किन्तु निष्फल प्रणय के मानसिक आघात ने उसे जर्जर और निष्प्राण कर दिया है । ठेठ शब्दों में यह रोमांटिक फीलिंग है, उस रोमांटिसिज्य से बहुत भिन्न, जो एक विद्रोही काव्य-अंदोलन है और जिसे हिन्दी में स्वच्छंदतावाद कहा जाता है। इस प्रकार की रोमांटिक फीलिंग वास्तव में किसी भी वाद से अभिहित काव्य की सूचक नहीं । वह केवल अपरिपक्व तरुण के खंडित कल्पना-जगत का कल्पना पोषित उच्छवास है । इससे अब यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस संकलन की कविताओं में सब से अधिक संख्या प्रणय-भावाश्रित रचनाओं की है । इस कविता-संग्रह के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि आरांभिक अभियान में कवि स्वयं 'भग्नदूत' रह गये थें ।

2) चिन्ता : सन् १९४१ में प्रकाशित दूसरा काव्य है । इसमें कवि ने नारी पुरुष के आकर्षण को ही मूल कथा के रूप में चित्रित किया है । इसमें पद्य-गद्य का प्रयोग किया गया है । अतः इसे चम्पू काव्य की श्रेणी में रखना अधिक उचित है। चिंता दो खण्डों में विभक्त हैं । 'विश्व प्रिया' और 'एकायन' । 'विश्वप्रिया' में पुरुष की प्रणयानुभूति का स्वरूप उद्घाटित किया गया है और 'एकायन' में स्त्री की प्रणयनुभूति का । अज्ञेय ने चिन्तन पुरुष और चिन्तन स्त्री के स्वाभाविक और मूलगत मनोभावों को व्यक्त करने की चेष्टा की है, किंतु वे स्वतंत्र सफल हुए हों इसमें संदेह है । उनके 'विश्वप्रिया' खण्ड में अज्ञेय का पुरुष, जो सामान्य की अपेक्षा असामान्य तत्वों से अधिक बना है, प्रच्छन्न रूप से व्यक्त हुआ है । मगर 'एकायन' खण्ड की नारी अवश्य ही अपने सहज और पारम्परिक रूप में स्पष्ट हुई है ।

3) **इत्यलम्** : सन् १९४६ में प्रकाशित 'इत्यलम्' इनका तीसरा प्रमुख काव्य है । इस विशाल काव्य संकलन के पाँच खण्ड हैं । पहले खण्ड में तो 'भग्नदूत' की अप्राप्य कविताएँ ही संकलित हैं, जब कि अन्य खण्ड हैं - बन्दी स्वप्न, हिय हारिल, वंचना के दुर्ग तथा मिट्टी की ईहा । 'बन्दी स्वप्न' खण्ड की अधिकांश कविताएँ अज्ञेय के बन्दी-जीवन से सम्बद्ध हैं, जिनमें बन्दी जीवन, क्रांति और राष्ट्रीयता के भावों को अभिव्यक्त की गई है । 'हिय-हारिल' खण्ड में अधिकांश कविताएँ प्रणय प्रतीकों और व्यक्तिवादी रहस्यवाद के रूप में है । 'वंचना के दुर्ग' खण्ड की कविताओं में प्रयोगों का अधिक्य है और 'मिट्टी की ईहा' खण्ड की कयीताएँ अधिकांशतः रूपकात्मक, प्रतीकात्मक है जिनका मुख्य विषय है आत्म तत्व का चिंतन एवं उन्मेष । इस काव्य संग्रह के अन्त में कवि रहस्व की ओर उन्मुख हो जाते हैं ।

4) **हरी घास पर क्षण भर** : सन् १९४७ में प्रकाशित इस कविता संग्रह में सन् १९४८ से १९४९ तक की कविताएँ संकलित हैं । अज्ञेय जी का यह काव्य 'गीतात्मक कविताओं का संकलन' कह जाता है । इसमें छन्द-तुक से सहित और रहित दोनों प्रकार की कविताएँ हैं । कहीं-कहीं ठेकों का ध्यान भी रखा गया है। प्रायः सभी काव्य कृतियों में से इस संग्रह की कविताएँ उनके प्रौढ़ काव्य व्यक्तित्व की परिचायक मानी जाती हैं । रचनाओं के आधार की दृष्टि से इस संकलन की अधिकांश कविताएँ आत्मान्वेषणमूलक और आत्मबोधमूलक हैं ।

5) **बावारी अहेरी** : सन् १९५४ में प्रकाशित बावारा अहेरी यद्यपि गीत नहीं, पर गीतात्मक अवश्य है । कवि के शब्दों में इस संग्रह की कविताओं में अनुभूति का सान्द्र-घन बनकर उमड़ पड़ी है । प्रभु वेदना, अहम् और सामाजिक सामयिक सभी प्रकार की चेतनाओं के स्वर इसमें सुने जा सकते हैं । इस संग्रह में भाव और कला की स्पष्टता और सुनिश्चितता के सुनियोजित आयाम उपलब्ध होते हैं । भाषा में भी प्रौढ़ता है अभिव्यक्ति में क्षमता है ।

6) **इन्द्रधनु रौंदे हुए** : सन् १९५७ में यह प्रकाशित हुआ। यह संकलन अज्ञेय के काव्य की नव्य दिशा का सूचक माना जाता है । इसमें समाज सापेक्ष आत्मपरक अनुभूतियों को प्रमुखतः स्वर एवं स्वरूप मिला है । इसकी अधिकांश कविताओं में अज्ञेय का चिंतन की प्रधानता है । प्रकृति का भी उपयोग कवि ने सत्यान्वेषण के लिए साधन के रूप में किया है । इसमें क्षणवादी चिंतन को प्रमुखता प्राप्त है ।

ारी **ओ करुणा प्रभामय :** इसका प्रकाशन सन् १६४६ में हुआ । इसमें ंलित कविताएँ चार खण्डों में विभाजत है । अधिकांश कविताओं में ाकात्मक स्वरूप दिखाई देता है । रहस्यवादी विचारधारा की दृष्टि से इस ह की 'द्वार हीन द्वार' कविता विशेष उल्लेखनीय है । इसमें सत्य की अनंतता ा एक संकेत दिया गया है । सत्यान्वेषण कार्य इस कविता संग्रह में हुआ है ।

) **आंगन के पार द्वार :** इस काव्य-संग्रह का प्रकाशन सन् १६६६ में हुआ । इस विता संकलन को साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला । इस संकलन की विताएँ अतः सलिला, चक्रान्त शिला, असाध्यवीणा नामक तीन शीर्षेकों में भाजित हैं । रहस्यवाद की इसमें चरम परिणति देखी जा सकती हैं । अज्ञेय ी अब तक की रचनाओं में सर्वाधिक लम्बी रचना है ।

) **कितनी नावों में कितनी बार :** इसका प्रकाशन सन् १६६६७ में हुआ । इस चना के लिए अज्ञेयजी को सन् १६७८ में भारतीय ज्ञनपीठ के पुरस्कार से म्मानित किया गया । यह कविता-संग्रह अज्ञेय की काव्य-यात्रा की महत्वपूर्ण पलब्धि है । यहाँ भी कवि की कविताओं में पक्व मन, प्रौढ़ चिन्तन, कलात्मक भिव्यक्ति, उदार मानवताबादी दृष्टि अपनी पूर्ण गरिमा के साथ अभिव्यक्ति, दार मानवातावादी दृष्टि अपनी पूर्ण गरिमा के साथ अभिव्यक्त हुई है । इसमें न् १६६८ से १६६६ तक की रचनाएँ संकलित हैं ।

कुलमिलाकर हम यह कह सकते है कि अज्ञेय की कविताओं में आधुनिकता ती रही । अशेय जी अधुनिक हिन्दी साहित्य की नदी के ऐसे द्वीप थे जिसके ाकर्षण से आनेवाली पीढियाँ शायद ही उभर पाएँ । अज्ञेय के कांव्य में ांकन पद्धति तथा प्रेगानुभीति :/

अज्ञेयजी-प्रमुखतः प्रेमानुभूति के समर्थ कवि है, और प्रेमानुभीति पर ाश्रित रूपांकन उसका एक प्रबल पक्ष है। अज्ञेयजी की अधिकांश कविताओं अवलोकन से यह परिलक्षित होता है कि उनके व्यक्तित्व नारी-सापेक्षता में ही ीभूत होता है । 'वैसे देखा जाय अनके कवियों ने नारी-सौंदर्य से प्रेरित होकर व्य-जगत को समृद्ध बनाया है । उसी तरह कवि अज्ञेय अपनी प्रेरणा भी नारी-ेक्षता से ही प्राप्त करते हैं -

जब जब थके हुए हाथों से
छूट लेखनी गिर जाती है
सूखा उर का रस स्त्रोत यह
तभी देवी क्यों सहसा दिख -
झपक छिप जाता, लेपस्मित मुख -
कविता को सजीव रेखा सी
मानस पट में गिर जाती है ?

इसमें साथ ही यह बात स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमव्यापार में अज्ञेय नैसर्गिकता के पक्षपाती है । 'खग-युगल' के प्रेम-व्यवहार को देखकर वे द्रवित होकर कहते हैं -

'हाय तुम्हारी नैसर्गिकता ! मानव-नियम निराला है
वह तो अपने ही से अपना प्रणय छिपानेवाला है ।'

सच पूछा जया ऐसी भावनाओं का विकास उसकी उन अनेक नैसर्गिक कविताओं में हुआ है, जिनमें प्रकृति के स्वाभाविक चित्रों में यौन-भावना का सन्निवेश करके कवि के द्वारा उन्हें यौन-प्रतीकों का रूप प्रदान किया गया है -

'घिर गया नभ, उमड़ आये मेघ काले,
भूमि के कम्पित उरोजों पर झुका-सा

विशद, श्वासाहत, चिरातुर
छा गया इन्द्र का नील वक्ष-
वज्र सा, यदि तडित से झुकसा हुआ सा ।
आह मेरा श्वास है उत्तप्त-
धमनियों में उमड़ आयी है लहू की धार
प्यार है अभिशप्त-
तुम कहाँ हो नारी ?'

अज्ञेय आगे देखते हैं कि 'धारयित्री' 'स्नेह से आलिप्त' और बीच के भक्ति से उत्फुल्ल' तथा बद्ध होकर सत्य सी निर्लज्जानंगी और समर्पित, वासना के पंख-

सी फैली हुई थी। ऐसा लगता है कि कवि का प्रेम अधिकांशतः वासना से ओत-प्रोत है -

'कुछ नही यहाँ भी अन्धकार ही है
काम-रूपिणी वासना का विकार हीं है
यह गुथीला व्योमग्रासी धुआँ - जैसा
आतताथी दुष्त-दुर्दम प्यार ही है ।'

कवि की मनः स्थिति कभी कभी ऐसी भी दिखई देती है कि यह वासना से परे हो जाते हैं -

'बाहु मेरे घेर कर तुमको रुके रहे
दो लताओं के प्रलंबित अंकुरों से
प्राण दोनों के
बस झुके रहे
वासना से, याचना से हम परे थे
सहज अनुरागी
नहीं मुझ अहम् की अभिव्यंजना जागी ।'

इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है कि जहाँ कवि अहम् को तिरहित हो जाने देता है, वहाँ वह काम की बड़ी ही उत्तम अनुभूतियों में मग्न होता हुआ परिलक्षित होता है । ऐसे स्थलों पर विरह की पीड़ा से प्रेम दुगुना होता दिखाई देता है -

'पा न सकने पर तुझे
संसार सूना हो गया है
विरह के आघात से प्रिय
प्यार दूना हो गया है ।'

कवि हमेशा प्रेम में ही चिर-ऐक्य होकर रहना पसंद नहीं करता । जब ऐसी स्थिति आ जाती है तो वह वासनात्मकता से पृथक होकर साधनात्मकता की ओर उन्मुख हो जाता है ।

'प्रेम में चिर ऐक्य कोई मूढ़ होगा तो होगा
विरह की पीड़ा न हो तो प्रेम क्यों जीता रहेगा
जो सदा बाधे रहे वह एक कारावास होगा
घर वही है जो थके को रैन-भर को हो बसेरा
पूछ लूँ मैं नाम तेरा ।'

यह सत्य है कि प्रेम, विरह की अग्नि में तपकर पवित्र हो जाता है । कवि विरह के अवसरों पर प्रेम को यज्ञ की पवित्र उद्दीप्त ज्वाला रूप में देखता है जिसमें वह निखर ने का अनुभूति लाभ कर चुका है-

'वे रोगी होंगे प्रेम जिन्हें अनुभव रस का कटु प्याला है
वे मुद होंगे प्रेम जिन्हें सम्मोहनकारी हाला है
मैंने विदग्ध हो जान लिया, अंतिम रहस्य पहचान लिया
मैंने आहुति बनकर देखा यह प्रेम यज्ञ की ज्वाला है ।

अज्ञेय का अहम् इतना सशक्त और उनके लिए ही इतना अत्याज्य है कि वे प्रेम के साधनात्मक रूप में अपने को बहुत अधिक तल्लीन नहीं कर पाने और नारी को मित्र के रूप में पाने की आशा प्रकट करते हैं । उनकी बौद्धिकता भी इस प्रकार की अभिव्यंजना को प्रभावित करती है । उनका क्षणवाद भी उनको उस प्रकार की भोग-वृत्ति और प्रकृतवादिता को प्रक्षय देता है । वे याद को पराजय मानने लगते हैं-

'भोर वेला नदी-तट की घन्टियों का नाद
चोट खाकर जग उठा सोया हुआ अवसाद
नहीं मुझको, नहीं अपने दर्द का अभिमान
मानता हूँ मैं पराजय है तुम्हारी याद ।'

कवि अज्ञेय ने रूपाकंन से सम्बन्धित अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं । रूपांकन में उन्होंने परंपरागत उपमानों को छोड़ दिया है, यहाँ तक की छायावादी प्रतीक और उपमानों को भी छोड़ने का प्रयत्न किया है । इन समस्त वर्णनों में उनकी मूल भावना शरीरिक आकर्षण अधिक प्रमुख है । उनका कहना है-

'ये उपमान मैले हो गये हैं
देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कुछ ।'

इस तरह नवीन उपमानों एवं प्रतीकों के सहारे नारी के उस रूप को व्यक्त किया है, जिसके प्रति वह निवेदित, समर्पित और कभी कभी उन्मथित भी हुआ रहा करता है-

'अगर मैं यह कहूँ
विचली घास हो तुम
लहलहाती हवा में कलगी छरहरे बाजरे की
एक प्रतीक
विछली घास है ।'

वस्तुतः 'नख-शिख' रीति-शास्त्र का बड़ा प्रसिद्ध शब्द है । उस रीति-युगीन 'नख-शिख' के अंतर्गत आनेवाले प्रत्येक अंग का उपमान स्थिर हो चुका है । अज्ञेय ने 'नख-शिख' नामक अपनी कविता में परंपरागत उपमानों को यदि कहीं लिया भी है तो संदर्भ तथा सम्बन्ध बदल दिया है -

'तुम्हारे देह
मुझको कनक-चम्पे की कली है
दूर ही से
स्मरण में भी गन्ध देती है ।
(रूप स्पर्शातीत वह जिसकी लुनाई
कुहासे-सी चेतना को मोह ले)
तुम्हारे नैन
पहले भोर की दो ओस-बूँदें है
अछूती ज्योतिमय
भीतर द्रवित
(मानो विधाता के हृदय में जग गई हो
भाप करुणा की अपरिमित ।)'

वस्तुतः रूपांकन की इन पंक्तियों में सांकेतिक नए-नए बिम्बों की कला विशेष रूप से समाविष्ट हुई है और उससे काव्यात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम की शक्ति बढ़ी है। अज्ञेय ने जहाँ अपनी अतः जनित शरीरी वासना से सौदर्य बोधगत संयम और चिन्तन को मिला दिया है, निश्चय ही वहाँ बड़ा उदात्त और अकुंठित रूप-चित्र अंकित हुआ है-

'देह बल्ली रूप की
एक बार वेझिझक देख लो
पिंजरा है पर मन इसी से उपजा ।'

निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि अज्ञेय की कविता के प्रारंभिक चरण से लेकर अद्यतन चरणों तक प्रेमानुभूति और रूपांकन की एक अविच्छिन्न धारा प्रवाहित है। यद्यपि आरंभिक काव्य में कवि को प्रेमानुभूति परंपरागत प्रेम भावना के अत्यन्त निकट है, किंतु धीरे-धीरे उसमें कवि उदार दृष्टि का द्वन्द्व है, प्रेम और रूप का द्वन्द्व है, प्रेम और काम-भवना का द्वन्द्व भी है और काव्य के अंतिम चरणों में इन सभी द्वन्द्वों को नैसर्गिकता घोर प्रेम के साधानात्मक रूप से पुष्टि प्राप्त हुई है । इनके साथ उनके काव्य में प्रेमानुभूति के विविध रूप भी दृष्टिगत होते हैं । और निस्सन्देह ही प्रेम का साधनात्मक रूप उनकी अनुभूति का महत्वपूर्ण अंग है । और सबसे बड़ी बात ऐसे काव्यांशों सर्वत्र गम्भीरता, शालीनता और अभिजात्य का समावेश है । इसे हम कवि की अनवरत साधना दृष्टि की परिपक्वता और अनुभवों की सघनता का निश्चित परिणाम कह सकते हैं ।

32.5 व्याख्या-भाग

वसंन गीन (अज्ञेय)
'मलय का झोंका.....गया, जागो, जागो ।

शब्दार्थ : मलय=सुंगधित वायु । स्निग्ध = चिकनी । सिरिस=एक वृक्ष विशेष सेटुओं = पलाश के पुष्प । व्योम = गगन

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ साहित्य मनीषी, सव. सच्चिदानन्द हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय' द्वारा रचित 'वसंत गीत' नामक कविता से उद्धृत की गई है । यह कविता

मूलतः 'बाबरी अहेरी' शीर्षक काव्य संकलन में संकलित है । इन पंक्तियों में ऋतुराज वसंत के आगमन से प्रकृति में होनेवाले नाना प्रकार के परिवर्तनों का सुन्दर चित्रण किया गया है ।

व्याख्या : ऋतुराज वसन्त के आगमन के सूचक सुगंधित वायु के झोंक का वर्णन करते हुए अज्ञेय जी कहते हैं कि वह अपने सुखद सुशीतल स्पर्श द्वारा प्रकृति के अंगप्रत्यंग तथा रोम रोम को सिहारते हुए मानों उनके कान में यह संदेश देता-फिरता है कि अरी सखियों ! अब सोते ऊँघते रहने का समय नहीं है, क्योंकि वसंत का आगमन हो चुका है । तात्पर्य यह, है कि वसंत ऋतु के प्रारंभ से प्रकृति में आनन्द छा जाता है । वसंत के पदार्पण होते ही मलय पर्वत से सुगंध को टकार बहनेवाली हवा अपनी सुखदशीतलता से लता-वृक्षादि को अंगों में कम्पन उत्पन्न करते हुए मानो उनके कानों में यह संदेश भी सुनाती रहती है कि अरी सखियों! सजग हो जाओं, क्योंकि तुम्हें आनंद प्रदान करनेवाला वसन्त फिर से लौट आया है।'

विशेष : 1) प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने मलयानिल के झोंके का मानवीकरण किया है । साथ हीं अपनी ऊर्वर कल्पना का परिचय दिया है ।

2) बिम्ब : स्पर्श तथा श्रव्य

3) अलंकार : वीप्सा, मानवीकरण, पुनरुक्ति

'पपिल की सूखी.....गया, जागो ।'

शब्दार्थ : सूखी खाल=छाल, स्निग्ध=मुलायम

व्याख्या : कवि कहता है कि आनन्द प्रदान करने वाले ऋतुराज वसंत का आगमन होने पर पीपल का वृक्ष जिसकी छाल इससे पूर्व सूखी हुई थी, नवीन चिकनी छाल को धारण कर लेता है - उसकी शुष्क छाल स्निग्ध छाल में परिणत हो जाती है । सिरिस के वृक्ष ने अपने रेशम जैसे कोमल पुष्पों को इस प्रकार धारण किया हुआ है, मानों उसने अपनी वेणी को वे शमी रिबन से बांधा हुआ है । वसंत के आगमन से पूर्व नीम के वृक्ष पर बौर भी नहीं आया हुआ था, जब के वसन्त अपितु उसमें कड़वेपन के स्थान पर माधुर्य का समावेश होते देखकर कचनीर की कली हँस रहीं है अर्थात् कचनीर की कली भी खिल उठी है । वसन्त ऋतु मे

पलाश के वृक्षों से इतनी बहुलता में लाल रंग के पुष्प पृथ्वी पर गिर रहे हैं कि उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानों वनस्थली ने वधु का वेश धारण किया हुआ हो - यह लाल रंग की चुनरी ही नहीं ओढ़े हुए है अपितु पलाश पुष्पों की आरती भी सजाए हुए है । कवि का यह कहना है कि वनस्थली-रूपी वधु लाल-रंग के अंगार-तुल्य अथवा कहिए दीपक की लौ जैसे पुष्पों को सजाकर वसन्त रूपी प्रियतम की आरती उतारना चाहती है । आकाश में भी मृदुल-प्रेम के परिचायक बादल घिर उठे हैं । अरी सखियों ! चारों तरफ उल्लास और उन्माद का वातावतण है, अतः तुम भी आलस्य और तन्द्रा छोड़कर जाग पड़ो ।

विशेष : 1) प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने पीपल की सूखी छाल के लिए खाल शब्द के प्रोयग करके अपने काव्य कौशल का परिचय दिया है ।

2) वनस्थली को वधु के रूप में चित्रित करते हुए प्रकृति का मानवीकरण किया है ।

चेत उठी ढीली ..... आ गया ! जागो ।

शब्दार्थ : चेत उठी=जागृत हो गयी । मानस=हृदय, चींह=पहचान कर । मधु-दूत=वसंत ।

व्याख्या : वसंत के आगमन के पहले जो लोग आलस्य और थकान का अनुभव करने थे, वे अब हर्ष और उल्लास से जाग उठे हैं । उनकी शिशों में रक्त तीव्र गति से प्रवाहित होने लगा है । नर-नारियों में स्फूर्ति का संचार हो गया है । उनके हृदय को दूर-दूर तक दिशाओं के ओर-छोर तक वायु मण्डल और गगन मण्डल में परिव्याप्त यह दबाई न जा सकनेवाली पुकार आहत कर गई है कि अरी सखियों ! अरे भाईयों ! प्रेम करना ही यौवन का प्रतीक है और यौवन में ही प्रेम किया जा सकता है । भाव यह है की वसंत ऋतु के स्फूर्तिदायक वातावरण में हरेक प्रेम करने के आकांक्षी है । वे पहचान गये हैं कि 'प्यार में ही यौवन है, यौवन में प्यार' विद्यमान रहता है । यह प्यार की ध्वनि दुरन्त भाव से चतुर्दिक छाई हुई है - इसे किसी भी प्रकार से दबाया नहीं जा सकता । आज मधु का दूत अर्थात् वसन्त अपनी रागिनी याद रहा हैं, इसलिए जाग जाओ ।

विशेष : 1) इन पंक्तियों में वसंत ऋतु के आगमन से मानव-जगत् पर पड़नेवाले प्रभाव का चित्रण किया गया है ।

2) प्रेम और यौवन के अट्ट बन्धन की महत्ता परिलक्षित होती है ।

5) उड़ चल हरिल (अज्ञेय)

'उड़चल.....जीवन की ।'

शब्दार्थ : हारिल=अपने चंगुल में लकड़ी का टुकड़ा लिए रहनेवाला एक पक्षी प्राची=पूर्व दिशा । बाट=हरदिन

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ अज्ञेयजी के 'इत्यलम्' शीर्षक कविता संग्रह में संकलित कविता 'उड़चल हारिल' से उद्धृत की गई हैं । इसमें हारिल को दुर्दम सर्जनेच्छ का और उसके पंजे में दबे तितके को निर्माण के यत्किंचित् साधनों का प्रतीक माना गया है ।

व्याख्या : कवि अपने अंतर्मन-रूपी हारिल पक्षि को सम्बोधित करते हुए कहता है कि अरे मेरे हृदय रूपी हारिल! तुमको तुच्छ तिनके के रूप में जो यत्किंचित् साधन क्षुद्र लेखनी का संबन्ध उपलब्द है, उसी का आश्रय लेकर तू सृजन के मार्गपर उत्तरोत्तर ऊँचे ही उड़ता रहा । कहने का तात्पर्य यह है कि तुझे साहित्य साधना के मार्ग पर लगातार चलना है । वह अपने मन-रूपी हारिल को यह तर्क देकर उत्तेजित करने का प्रयास करता है कि देख ! पूर्व दिशा में उदित होनेवाले सूर्य की आकाश में छाई हुई उपाकालीन स्वर्णिम-आभा नव जागरण और कर्मठता का संदश दे रही है तो फिर तू और किसकी प्रतीक्षा रखता है। अर्थात् अब तू किसीकी प्रतीक्षा में समय नष्ट मत कर और अपने गंतव्य की ओर उन्मुख हो । कवि का यह कहना है कि उसके अंतर्मन को किसी से प्रोत्साहन और प्रेरणा पाने की प्रतीक्षा करते रहने तथा यह सोचकर संकुचिय होते रहने की जरुरत नहीं है कि मेरे पास काव्य-सृजन के लिए यथेष्ट और उपयुक्त साधनों का अभाव है अर्थात् उसमें वांछित अनुभूति प्रवणता कवि-प्रतिभा अथवा कल्पना शक्ति का अभाव है । इस बात की आवश्यकता है कि वह अपनी काव्य क्षमता पर विश्वास करता हुआ सृजन-मार्ग पर अग्रसर हो जाए ।

कवि आगे कहता है कि ओ मेरे हृदय रूपी हारिल ! तुझे अपनी आत्म-शक्ति और संकल्प शक्ति पर दृढ़ विश्वास होना चाहिए क्योंकि जब तक किसी कवि में उत्तम अभिव्यंजना शक्ति नहीं होगी उसकी काव्य-रचना की आशा व्यर्थ ही सिद्ध होगी ।

विशेष : 1) इन पंक्तियों में हृदय पर हारिल पक्षी का आरोप है ।

2) बोलचाल की भाषा का प्रयोग, भाव व्यंजना की दृष्टि से बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है ।

3) हारिल और तिनका में रूपकातिशयोक्ति अलंकार है ।

'ऊपर-ऊपर....., पहचान लिया है ।'

शब्दार्थ : दिग्मंडल = दिशाओं का घेरा । विधना = ईश्वर । स्पन्दन=हलचल हेर=देख । गुरु = मंत्र ।

व्याख्या : कवि अपने मन पर हारिल का आरोप करते हुए कहता है कि अरे मेरे हृदय-रूपी हारिल ! तुझे दिशाओं के घेरे-रूपी बाधाओं को पार करते हुए अपने काव्य सृजन रूपी लक्ष्य को लगातार उन्नत रखना है । तुझे अपने अथक प्रयास से साहित्य जगत एवं समाज रूपी आकाश में खलबली उत्पन्न करनी है । अर्थात् मार्ग के उपस्थित होनेवाली बाधाओं को हटाकर अपने काव्या-सृजन रूपी लक्ष्य तक पहुँचना है। अपनी इच्छानुसार साहित्य-जगत में हलचल गचाना है ।

हृदय रूपी हारिल से संबोधित करते हुए कवि आगे कहता है कि तुझको तिनके रूपी लेखनी प्राप्त है, उसे तुच्छ मानकर ठुकराना मत, क्योंकि वह कालजयी कलाकृतियों की रचना करने में सक्षम है । तिनका रूपी सृजनाकांक्षा कोई साधारण तत्व नहीं है अपितु यह एक दिव्य और असाधारण तत्व है । तेरी यह सृजनाकांक्षा ईश्वरीय प्रेरणा का परिणाम है ।

अपनी सृजनाकांक्षा को मजबूत करते हुए कवि आगे कहता है कि तुझको दसों दिशाओं में अर्थात् अपनी साहित्यिक और सामाजिक वातावरण में खोखलापन दृष्टिगोचर हो रहा-हो तो उसकी चिन्ता मत कर । तू यह सोचकर विकम्पित मत हो कि ऐसे खोखले परिवेश में उत्कृष्ट काव्य रचना कैसी की जा सकती है । इसी प्रकार यदि आलोचक वर्ग तेरे काव्यों का उपहास करता हो तो भी तुझको इस उपहास की चिन्ता न करते हुए आगे बढ़ना है ।

कवि-मानस को प्रेरेपित करते हुए अज्ञेयजी कहते हैं की यह सच है कि तुझमें कुछ मानवोचित दुर्भलताएँ हैं, क्योंकि तू वस्तुतः मिट्टी के पुतले में निवास करता है, किंतु किसी अन्य की रचना और मिट्टी का पुतला होते हुए भी तू आज स्वयं एक

रचनाकार है, अतः नवीन निर्माण की कामना से तुझमें मानवेतर गुणों का विकास होना चाहिए । तुझको कुछ अलौकिक अपार्थित गुणों से ओत-प्रोत होना चाहिए । कवि का अभिप्राय यह है कि उसका हृदय-रूपी हारिल नवीन निर्माण के उत्तरदायित्व का निर्वाह तभी कर पाएगा जब तुझमें भूतलोत्तर गुणों की व्याप्ति होगी । यह सत्य है कि तू माटी के पुतले में अधिवास करता है और तू किसी अन्य की (ईश्वर की रचना है, किंतु जब तू रचनाकार होने जा रहा है और तूने सर्जक होने के महत्व को जान लिया है तो फिर तुझको इन जागतिक मलिनताओं से ऊँचा उठना चाहिए ।

विशेष : 1) उपर्युक्त पंक्तियों में कवि प्रतिभा को भगवान की देन के रूप में स्वीकार किया गया है ।

2) पुरानी परंपरओं के स्थान पर नवीन मान्यताओं की महत्ता लक्षित होती है ।

3) अज्ञेयजी ने नई कविताओं के आलोचकों के प्रति अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति की है ।

'मिट्टी निश्चय है.....पावन तिनका ।'

शब्दार्थ : ऊर्ध्वग=ऊपर की ओर जानेवाली । दुर्निवार=जिसको काटा न जा सके। नभ-पथ=आकाश मार्ग। आवाहन=निमंत्रण ।

व्याख्या : कवि कहते है कि मानव को मिट्टी का पुतला मानना उचित नही है, क्योंकि ऐसे माने जाने के कारण मानव के हृदय में नाना प्रकार की मलिनताओं की परिव्याप्ति स्वाभाविक रूप से हो जाती है । तथापी उसकी रचना क्योंकि अलौकिक गुण संपन्न ईश्वर द्वारा की आती है, अतः उसमें अलौकिक गुणों का समावेश मानना भी उतना ही नैसर्गिक प्रतीत होता है । जिस अलौकिक शक्ति ने तुझको मलिन भावों से ऊँचा उठने की शक्ति प्रदान की है, उसी ऊर्ध्वगामी शक्ति का तुझको संदेश वाहक बनना चाहिए । यह संदेशवाहक कार्य भी तुझको ऐसे अडिग भाव से करना है कि कोई चाहते हुए भी तेरा प्रतिरोध न कर सके । तेरी सृजनाकांक्षा का दृढ़संकल्प रूपी जो ध्वज-दंड है, तुझे उस ध्वज-दंड को ही अपना एक मात्र सहारा समझना चाहिए । यह है कि निर्माण रूपी गिरान पथ पर तुझको मात्र अपने सृजनाकांक्षा का स्मरण लेते हुए ही निरंतर अभीष्ट लक्ष्य की ओर गतिशील रहना चाहिए ।

कवि एक ओर वास्तविकता में आस्था नहीं रखता, उसी प्रकार वह कोरे आदर्श में भी विश्वास व्यक्त नहीं करता । इस तथ्या की सांकेतिक अभिव्यंजना करते हुए वह कहता है कि साहित्य से मिट्टी अथवा मानवजीवन की जो वास्तविकता छीन ली गई है अर्थात् साहित्य में अकुंठित भावनाओं के जिस चित्रण से बचा जाता है, उसको उसी रूप में परित्यक्त रहने देना भी ठीक नहीं है, कारण यह है कि ऐसा करना प्रकारान्तर से जीवन के साधनों की उपेक्षा करना है और किसी रचना व्यक्तित्व के लिए इस तथ्य को उचित नहीं माना जा सकता । भाव यह है कि वास्तविकता की सर्वथा उपेक्षा करते हुए आदर्श लोक में विचरण करते रहना उचित नहीं माना जा सकता ।

आगामी पंक्तियों में कवि ने अपने हृदय रूपी हारिल को संबोधित करते हुए कहा है कि तेरा यह सृजनाकांक्षा रूपी तिनका तेरे महान गंतव्य की दृष्टि से धूलि के कण की तरह तुच्छ-नगण्य ही है, तथा तू भी उस ईश्वर के पावन चरणों की धूलि मात्र ही है, किंतु सृजन की आकांक्षा से प्रेरित होकर अपने लक्ष्य की ओर संचरण शील होने के रूप में तूने एक प्रकार से अमरत्व का स्पर्श कर लिया है। भाव यह है कि तू अपनी काव्यभिव्यंजना के रूप में अमर हो जाएगा । आगे कवि कहते हैं कि हे हारिल । देख पूर्व देशा में जागी हुई उषा नूतन दिवस का आहान कर रही है - अर्थात् वह नवीन दिवस का स्वागत करते हुए नवजागृति का संदेश प्रदान कर रही है । अतः प्रेरणादायक परिस्थिति से प्रभावित होकर, तू भी सृजन कार्य करता चल ।

विशेष : 1) इसमें प्रगतिवादी काव्य की घोर वास्तविकता का अभाव है ।

2) नयी कविता में क्षणवाद को प्रधानता दी गयी है, अज्ञेयजी की इस कविता में भी क्षणवाद परिलक्षित होता है।

3) कवि कर्म की महत्ता को स्वीकार करते हुए, उसे ईश्वर के संदेश-वहन के रूप में देखा गया है ।

32.6 'मुक्तिबोध'

नयी कविता की परंपरा में गजानन माधव मुक्तिबोध का स्थान विशेष महत्व रखता है । हिन्दी साहित्य के जगत में कुछ ऐसे भी कवि थे, जिनका उचित समय पर मूल्यांकन नहीं हो पाया । मुक्तिबोध भी इसी श्रेणी के अंतर्गत आते

हैं। मुक्तिबोध की कृतियों की पहचान बहुत ही विलम्ब से हुई । यह हर्ष का विषय है कि अब उनके मूल्यांकन और विवेचन की ओर ध्यान दिया जा रहा है। उन पर भी अनेक दृष्टिकोण से शोधकार्य किये जा रहे हैं । गजानन माधव मुक्तिबोध 'मुक्तिबोध' नाम से ही विख्यात हैं । संभवतः उनके पूर्वजों में से किसी ने 'मुक्तिबोध' नामक कोई आध्यात्मिक ग्रन्थ लिखा था, फलस्वरूप उनके वंश को 'मुक्तिबोध' नाम से जानना रूढ़ होगया ।

गजानन का जन्म १३ नवंबर १९१७ को ग्वालियर में हुआ और उनकी प्रारंभिक शिक्षा उज्जैन में हुई । इनके पिता पुलिस में सब इंस्पैक्टर थे, और उनकी बारबर बदली हो जाने के कारण, कवि की पढ़ाई का क्रम टूटता-बनता रहा, इस के साथ ही अनेक स्थानों को देखने का अवसर भी मिला । उन्होंने सन् १९३८ में बी.ए. की परीक्षा पास की । उनकी आर्थिक स्थिति संतोषज़नक नहीं थी, अतः उन्होंने कई काम-धन्धे किये । मगर उनकी आर्थिक स्थिति में सुधार न हो पाया, अंत में उनके मित्रों की सलाह से मुक्तिबोध ने सन् १९५४ में एम. ए. पास की, फलस्वरूप राजनंद गाँव के दिग्विजय कालेज में प्राध्यापक बनगये। ७ फरवरी को उनपर पक्षाघात का आक्रमण हुआ और ११ सितम्बर १९६४ को उनकी मृत्यु हुई ।

मुक्तिबोध बचपन से ही रात के सन्नाटे, रहस्य, अन्धकार, घुमक्कडपन, फक्कड़पन आदि के प्रति विरोष आकर्षित थे । जंगल में घूमना इनको अच्छा लगता था । मुक्तिबोध का एक मित्र था शांताराम । वह गश्त का काम करता था । मुक्तिबोध कई बार रात के समय उसके साथ घूमने निकल जाते थे । रात का सन्नाटा, पुलिस की सीटियाँ, गश्त, सर्वत्र एक रहस्य का वातावरण । ऐसा लगता है कि मुक्तिबोध उनसे प्रभावित थे ।

मुक्तिबोध 'तार सप्तक' के कवि हैं । उनकी मृत्यु के उपरान्त 'चाँद का मुहँ टेढा है' नाम से उनकी कविताओं का एक संग्रह भी प्रकाशित हुआ है । इस संग्रह को प्रयोगवाद और नयी कविता दोनों धाराओं का कविता-संग्रह कहा जायेगा क्योंकि वादों से ऊपर सच्चे अर्थों में युग-चेता कलाकार हैं । मुक्तिबोध की चेतना, छायावाद की रूमानेयत, रहस्यवाद की गूढ़ता और प्रगतिवाद की इतिवृत्तात्मकता में पनपी है । इसलिए उनकी कविताओं में इन तीनों परम्पराओं की विशेषताएँ मौजूद हैं । उन्होंने इन सब को पचाकर एक नैसर्गिक शैली

अपनाई । मुक्तिबोध की प्रतिभा समाजोन्मुखी ध्येयवादिनी, प्रतिवादात्मिकता और भावमयी है । आधुनिक मन की विशेषता, अपने परिवेश के प्रति उपेक्षा, मूल्यों में अविश्वास औव मूल्यों के प्रति अनासाक्ति की भावना उनमें नहीं है। मूलतः मुक्तिबोध सभी वादों में से गुजरकर सभी की संधिगत भाषा का प्रयोग ग्रहण करते हुए भी वे कथ्य रूप में भाविष्य के कवि हैं ।

मुक्तिबोध का काव्यारंभ छायावादी पुष्ठभूमि पर ही होता है । प्रारंभ में वे व्यक्तिवादी थे । उन्हीं के शब्दों में '१९३८ से ४२ तक के पांच साल मानसिक संघर्ष और बर्गसोनीय व्यक्तिवाद के वर्ष थे । बर्गसा की स्वतंत्र क्रियमाण जीवन शक्ति के प्रति मेरी दृढ आस्था थी ।' लेकिन मुक्तिबोध का व्यक्तिवाद अज्ञेय और प्रयोगवादियों जैसा नहीं है । जीवन और जीवन की शक्ति के प्रति उनकी आस्था उत्तरोत्तर दृढ होती गयी है ।

मुक्तिबोध प्रगतिवादी कवि हैं, लेकिन उनका प्रगतिवाद माकर्सीय दर्शन के अध्ययन अथवा साम्यवादी दल के नारों पर नहीं टिका है जैसा कि बाद में नामवर सिंह जैसे आलोचक ने उन्हें प्रतिबद्ध माकर्सवादी सिद्ध करने का प्रयास किया है । उन्होंने जीवन को भोगा है और उनकी कटुताओं को सह है । इसलिए उनमें पूँजीपतियों के प्रति एक खास आक्रोश दिखई देता है । पूँजींपतियों के हाथों अपने तिरस्कार के अतिरिक्त जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी मुक्तिबोध को तीव्र संघर्ष करना पड़ा । परिणामस्वरूप उनकी प्रारंभिक कविताओं में प्रयोगवादी शंका, अनास्था, विक्षोभ आदि प्रवृत्तियाँ दिखाई पड़ती हैं। लेकिन जीवन संघर्ष में से गुजरकर उन्होंने इन प्रवृत्तियों से मुक्ति प्राप्त करके शीघ्र ही आस्था के सूत्र खोजने का प्रयास किया है और जीवन को जीने योग्य मानकर उन्होंने मानवतावादी अन्तदृष्टि प्राप्त कर ली है । अन्तदृष्टि के इस अंजन के साथ ही वे अपने उन कम्यूनिष्ट साथियों को फटकारते हैं जो अवसरवादी हैं । इसी ईमानदारी ने उन्हें एक सुदृढ व्यक्तित्व का स्वामी बनाया है ।

जीवन के प्रति इस दृढ आस्था वे आधार उनके व्यक्तित्व की पुष्ठभूमी में सामाजिकता रही है । यही सामाजिक चेतना उन्हें पथ-भ्रष्ट होने से रोकती रही है । धीरे-धीरे उनकी काव्य-यात्रा का आन्तरिक संघर्ष आत्मान्वेषण के पथ पर बढ़ता है। वे इस संघर्ष पर पहुँचते हैं कि 'विशुद्ध व्यक्तिनिष्ठता अपने ही उद्धेश्य को पराजित कर देती है ।' इस प्रकार मानव जीवन के प्रति अनुराग उत्पन्न होता

है । वे अनुभव करते हैं कि कला का केन्द्र व्यक्ति है पर उसी केन्द्र को अब दिशाव्यापी करने की आवश्यकता है । उनका शेषन जीवन को गति देने में सदैव सचेत रहा है और इसी में उनका उद्धेश्य निहित है । उन्होंने विसंगतियों के प्रति विद्रोह करना सीखा है । वे सतन् अन्वेषी हैं ।

32.7 मुक्तिबोध की कृतियाँ

मुक्तिबोध की कृतियों में गद्य एवं पद्य दोनो हैं । 'कामायनी : एक पुनर्विचार' (आलोचना) 'नयी कविता का आत्म संघर्ष' (आलोचना, 'एक साहित्यिक डायरी' (साहित्य एवं उनके जीवन से सम्बंधित विचार) 'काठ सपना' (कहानी संग्रह), 'विपात्र' (उपन्यास) 'चाँद का मुहँ टेढा है' (कवित संकलन) आदि हैं । मुक्तिबोध की अभी सभी कविताएँ प्रकाश में नहीं आ पाई हैं। सुना है कि शीघ्र ही उनकी शेष, अधिक पर अधूरी कविताओं कों प्रकाशित करने का उपक्रम किया जा रहा है ।

यहाँ पर 'चाँद का मुँह टेढा है' - कविता-संकलन उल्लेखनीय है । मुक्तिबोध की मुत्यु के उपरान्त श्रीकांत वर्मा ने इसका संकलन किया । इसमें १९५४-६४ के बीच लिखी गयी २८ कविताएँ हैं । अधिकतर कविताएँ बहुत लिखी हैं । 'अंधेरे में' तथा 'ब्रह्मराक्षस' ऐसी ही कविताएँ हैं । 'ब्रह्मराक्षस' में मुक्तिबोध ने युगीन जटिलताओं को परस्परा से संबद्ध करके देखा है । परम्पराको उन्होंने ऐतिहासिक अनिवार्यता के रूप ग्रहण किया है । यह 'ब्राह्मराक्षस' मार्कर्स, एंजेल्स रसेल, टरयन्वी, हीडेगर, वस्पेग्लर, सार्त्रे, गांधी सभी के सिद्धान्तों की नयी व्याख्या करता है । इन सभी आधुनिक दार्शनिकों के चिंतन की परख वह ब्रह्मराक्षस परम्परा के परिप्रेक्ष्य में करता है और उस विघटन को सहेजकर समय-समय पर कुछ-कुछ नयी मूल्य-दृष्टि भी दी है ।

मुक्तिबोध की ब्रह्मराक्षस लम्बी कविता है । इसमें उन्होंने रूढ धारणओं के सड़े-गले अन्तराल में से जीवन के सजीव तत्वों को संकलित करने का सफल प्रयत्न किया है। जो व्यक्ति दूसरे को पत्नी का हरण करता है या ब्राह्मण का धन हरता है, वह मृत्यु के बाद जंगल के किसी निर्जन प्रदेश में जाकर ब्रह्मराक्षस हो जाता है । किंतु मुक्तिबोध की कल्पना में ब्रह्मराक्षस एक ऐसे व्यक्ति का प्रतीक है, जो जीवन भर कुछ अधिक उत्तम या उत्कृष्ट पाने केलिए संघर्ष रहते हुए अपने आप में ही निर्वासन भोगता है । वह अपने मन को ही अतल गहराइयों में पड़ा

हुआ जीवन के विधिध पक्षों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए अनवरत सोचता रहता है और अन्त में एक दिन अनचिन्ह ही मरजाता है । भाव यह है कि ब्रह्मराक्षस इस अनवरत प्रयास 'का प्रतीक लगता है । जो सदियों के मटमैले कुहासों को धोंकर जीवन को निवारने का प्रयासक है, पर अंग धारणाएँ उसके प्रयासों को सफल होने नहीं देती । इस संदर्भ में खण्डहर बावडी, उसकी पुरानी सीढियाँ, पानी, अन्धेरा आदि सभी परम्परगत धाराओं के प्रतीक और परिचायक है ।

इस तरह अन्य रचानएँ भी मुक्तिबोंध के अनवरत अध्ययन, चिन्तन, मानव और अन्वेषण के फल स्वरूप में रूपायित हो गयी हैं ।

32.8 बोध प्रश्न

1 अज्ञेय और उनकी काव्य कला का परिचय दीजिए।

2 मुक्तिबोध के काव्य की विशेषताएँ समझाइए।

32.9 नमूने का उत्तर

1 अज्ञेय और उनकी काव्य कला का परिचय दीजिए।

उत्तर - आधुनिक हिन्दी काव्य, कथा साहित्य और निबंध साहित्य को 'अपने प्रखर प्रयोगवादी व्यक्तित्व से नये सांचे में ढालनेवाले अज्ञेयजी का पूरा नाम सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्सायन है । 'अज्ञेय' इनको प्रसिद्ध कथाकार जैनेंद्र द्वारा दिया गया उपनाम और उसी नाम से प्रख्यात हो गये । हिन्दी साहित्य के इतिहास में अनेक दृष्टियों से इनका व्यक्तित्व और कृतित्व अत्यधिक महात्वपूर्ण माना जाता है । जीवनी-प्रधान व्यक्ति-चेतना से समन्वित मनोविश्लेषणवादि उपन्यास-साहित्य के भी अग्रणी हैं । एक कुशल संपादक होने के साथ-साथ अज्ञेयजी एक कुशल मनोवैज्ञानिक कहानीकार भी हैं और निबंध साहित्य को भी उन्होंने नये मूल्य तथा मान प्रदान किए हैं । इस प्रकार साहित्य की विभिन्न विधाओं को नव्यता प्रदान करके भी आरंभ में इन्हें अनेक प्रकार के आक्षेपों एवं उपेक्षाओं का सामना करना पड़ा, पर आज हिन्दी का विधात्मक साहित्य जिन संचरणों में व्यतीत हो रहा है, उनमें इनकी उपेक्षा कर पाना तो नितांत असम्भव हो गया है, इनका महत्व अत्यधिक बढ़ गया है ।

अज्ञेयजी ने जन्म से क्रांतिकारी विचारों के संवाहक और साथ में क्रांतिकार मशाल लेकर देश के समस्त आन्दोलनों तथा इस मुल्क के सुख दुःख के साथ संवेदनाशील रहकर अपने साहित्य का प्रणयन किया है । यही कारण है कि छायावादी रोमान्स, सतरंगी कल्पना की उडान नक्षत्र लोक का चित्रमय वर्णन इनके काव्य में नहीं है, अपितु अपने समाज के जीवन मूल्यों के प्रति इनका काव्य सदा आस्थावान् रहा है । अपनी सृजनशील प्रतिभा से अज्ञेयजी ने छायावादोत्तर युग में नई चिंतन धारा का सूत्रपात किया, विभिन्न धरातलों पर सोचनेवाले नाना कवि-लेखकों का संघटन किया, उनको अपनी अपनी मंजिलों को तय करने की स्वतंत्रता देकर भी समाज और लेखन के प्रति प्रतिबद्धता जगाकर बदलते मूल्यों और संकीर्ण समस्याओं पर तीव्र आस्थावान होकर चिंतन-मनन करने की प्रेरणो दी । इतना ही नहीं स्वयं उन सब के अग्रणी हिन्दी साहित्य में प्रयोगवादी नई कविता का शंखनाद किया ।

अज्ञेयजी का जन्म सन् १९११ में उत्तर प्रदेशस्थित जिला गोरखपुर के कालिया नामक स्थान पर हुआ था । इनके पिता पण्डित हीरानन्द शास्त्रीजी स्वभाव से कुछ तीखे आत्म गौरव के भाव से सम्पन्न थे और वे पुरातत्व विभाग में कार्य करते थे, अतः आर्थिक विपन्नता का कोई प्रश्न या समस्या इनके सामने नहीं थी । खुदाई के दौरों पर जब कभी विभिन्न स्थानों पर पण्डित जी जाते थे, तब अपने परिवार को भी साथ ले जाया करते थे । परिणम स्वरूप बचपन के दिनों से देश के विभिन्न भागों में, भ्रमण करने का अवसर अज्ञेयजी को मिला। जहाँ तक शिक्षा-दीक्षा का प्रश्न है, उनकी प्रारंभिक शिक्षा की व्यवस्था घर पर ही की गई थी । उसके पश्चात् मैट्रिक परीक्षा इन्होंने मद्रास में रहकर उत्तीर्ण की और आगे बी.एस.सी. की परीक्षा पंजाब विश्वविद्यालय लाहोर में उत्तीर्ण की । आगे अंग्रेजी में एम.ए. करना चाहते थे, कोई डेढ़ वर्ष तक इसकी तैयारी भी करते रहे, पर परीक्षा में बैठने का अवसर प्राप्त न हो सका । इसका कारण था इनके विचारों की क्रांतिकारि और कांतिकारियों के आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेना। इस कारण इन्हें एम.ए. परिक्षा में बैठने से पूर्व ही गिरफ्तार करके जेल में डाल दिया गया ।

अज्ञेयजी का क्रांतिकारी जीवन सन् १९२९ से शुरू होता है । सन् १९२९ से लेकर ई. तक इनका जीवन क्रांतिकारी का जीवन रहा है । भगतसिंह को जेल

से छुडाने की योजना, दिल्ली हिमालयन टायलेटस फेक्टरी की स्थापना करके वैज्ञानिक सलाहकार के रूप में नौकरी करते बम बनाने की योजना, इस प्रकार का प्रयत्न जब की १६३० में अमृतसर में हुआ तब गिरफ्तार हो जाना-ये सब उनके क्रांतिकारी जीवन के महत्वपूर्ण बिन्दु हैं - जेल जाना इनके लिए एक प्रकार से वरदान सी प्रमाणित हुआ, क्यों कि साहित्यकार के रूप में आज जो इनका स्थान और महत्व है, उसका शुभारम्भ कारावासकाल में ही हुआ । जेल के दिनों का अपना अधिक समय अध्ययन, चिंतन-मनन में बिताया । इस आत्म-मन्थन ने उन्हें नया जीवन दिया। अज्ञेय विद्यार्थी जीवन से ही गम्भीर अध्येता थे। अपने कालेज-जीवन में प्रो.जे.वी. बनेड, प्रो. डेनियल जैसे विद्वानों के सम्पर्क में आए । विभिन्न धर्मो का तुलनात्मक अध्ययन किया।

अनेक हिन्दी लेखकों की दृष्टि में अज्ञेय भारतीय होते हुए भी विदेशी हैं, इनकी राष्ट्रीयता पर ही प्रश्न चिह्न लगाए गए थे । किंतु असल बात तो यह है कि भारत के प्रति इतना प्रेम है कि अपनी जिन्दगी भर भारतीय चिंतनधारा और यहाँ के जीवन-मूल्यों का व्यापक प्रचार इन्होंने किया है । इनकी रचनाओं में यहाँ की संस्कृति मूल्य स्पष्ट प्रतिपादित हुए हैं। अँग्रेजी भाषा के संबंध में उनका यहाँ तक कहना है कि अँग्रेजी कभी भी भारत भाषा नहीं थी ।

ग्यारह वर्ष की आयु में उन्होंने "गंगा-स्तुति" रच डाली। इन्हीं दिनों "आनंद बंधु" नामक एक हस्तलिखित पत्र भी प्रकाशित किया । संस्कृत और हिन्दी छंदों का भी इन्हें ज्ञान हो गया था और उनमें अनेक कविताएँ भी रची थी । लाहौर का लेज-पत्रिका में इनकी कविताएँ प्रकाशित होने लगी थी और उन्होंने कवीन्द्र रवींद्र की "गीताँजली" से प्रभावित होकर अनेक रहस्यवादी गीत भी रचे जो अप्रकाशिन ही हैं । लेखकीय तत्व इनके शैशवी-सुकुमार क्षणों से ही इनके व्यक्तित्व में विद्यमान थे, पर इनका वास्तविक और प्रगट प्रतिफलन कारावास के प्रवास काल में ही हुआ । अतः इनके रचना-काल के प्रारंभ को सन् १६३०-३६ से ही मानना चाहिए ।

अज्ञेयजी भारतीय पत्रकारिता के आधारस्तम्भों में से हैं। अनेक पत्रिकाएँ संपादित हैं । हिन्दी की ख्यात पत्रिका "दिनमान" के संपादक के रूप में १६३४ से १६३७ तक कार्य किया । 'नवभारत टाइम्स' दैनिक का संपादन भी किया । जोधपुर विश्वविद्यालय में तुलनात्मक साहित्य विभाग के निर्देशक के रूप में

अज्ञेयजी कार्य कर रहे थे । हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने 'साहित्य वाचस्पति' की और १९७२ में विक्रम विश्वविद्यालय ने डी. लिट की मदान उपाधि से सम्मान किया । इनके कविता-संग्रह "अँगन के पार द्वार पर" को १९३४ का केन्द्रीय साहित्य अकादमी का पुरस्कार प्राप्त हुआ है ।

सन् १९७८ मैं इनके 'कितनी नावों में कितनी बार' नामक कविता संग्रह के लिए भारतीय ज्ञनपीठ पुरस्कार प्राप्त हुआ। ४ अप्रैल १९८७ को अज्ञेयजी का आकस्मिक निधन हो गया । इससे हिन्दी जगत की अपार क्षति हुई । अज्ञेयजी ने अपनी लेखनी से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया । उनकी साहित्य साधना की अमिट छाप सदैव हिन्दी साहित्य पर रहेगी ।

व्यक्तिगत जीवन में अज्ञेयजी विषकंठ थे । उनका भोगा हुआ व्यापक जीवन उनकी लेखनी से कभी कहानी, कभी उपन्यास, कभी काव्य के रूप में सामने आया है । लेखन कार्य को विवशता या मजबूरी मानते हुए अज्ञेयजी कहते हैं, "लिखकर ही लेखक उस अभ्यांतर विवशता को पहचानता है, जिसके कारण उसने लिखा । मैं भी उस आन्तरिक विवशता से मुक्ति पाने के लिए, तटस्थ होकर उसे देखने और पहिचानने के लिए लिखता हूँ ।"

कवि के रूप में अज्ञेयजी का महत्व एक युग प्रवर्तक के रूप में स्वीकारा जाता है । अज्ञेय प्रारंभ में प्रयोगवादी कवि रहे किंतु 'तारसप्तक' की कविताओं के साथ 'नयी कविता' के युग में प्रवेश किया । 'नयी कविता' के प्रवर्तक के रूप में ख्याति भी अर्जित की । अज्ञेयजी के संदर्भ में कहा गया है - 'अज्ञेय में संवेदना के साथ एक सजग बौद्धिकता है । यह बौद्धिकता उनकी संवेदना को नियंत्रित तो करती है, साथ ही कभी नवीन सूक्तियों के रूप में, कभी व्यंग्य के रूप में भी, व्यक्त होती है, जो संवेदना या अनुभूति से अंतरंग भाव से जुड़ी न होने के कारण बिम्ब रचना के बावजूद बहुत दूर तक प्रभावित हो जाती' । अज्ञेयजी की कविताओं में निर्वैयक्तिकता स्पष्टतः परिलक्षित होता है नकारात्मक स्थिति से अलग रहकर पीछे की ओर मुड़कर देखने की आस्था है, समाज का यथार्थ चित्रण करने में व्यंग्य शैली को स्वीकार किया है । कवि ने नये छन्द, नये प्रयोग व नये शब्द को प्रदान किये हैं । शिल्प की दृष्टि से 'नयी कविता' के क्षेत्र में अज्ञेयजी का नाम महत्वपूर्ण है ।

अज्ञेयजी के अनेक काव्य संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं और प्रायः सभी का हिन्दी कविता के पाठकों ने स्वागत किया है । उनके कुछ काव्य-संग्रह निम्नांकित हैं ।

1) भग्नदूत : काल क्रम की दृष्टि से सन् १९३३ में प्रकाशित 'भग्नदूत' इनका प्रारम्भिक काव्य-संग्रह है । इस पर छायावादी काव्य-चेतनाओं का प्रभाव अत्यंत स्पष्ट है । इनमें अपनी किशोरावस्था की रोमांटिक अनुभूति को अपनी वाणी से मुखरित किया है । एक आलोचक के शब्दों में 'भग्नदूत शीर्षक तरुण वय के उस सुखद आत्मपीड़न की वह एक बहुत बड़े उद्धेश्य के लिए अवतरित हुआ था । किन्तु निष्फल प्रणय के मानसिक आघात ने उसे जर्जर और निष्प्राण कर दिया है । ठेठ शब्दों में यह रोमांटिक फीलिंग है, उस रोमांटिसिज्य से बहुत भिन्न, जो एक विद्रोही काव्य-अंदोलन है और जिसे हिन्दी में स्वच्छंदतावाद कहा जाता है। इस प्रकार की रोमांटिक फीलिंग वास्तव में किसी भी वाद से अभिहित काव्य की सूचक नहीं । वह केवल अपरिपक्व तरुण के खंडित कल्पना-जगत का कल्पना पोषित उच्छवास है । इससे अब यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस संकलन की कविताओं में सब से अधिक संख्या प्रणय-भावाश्रित रचनाओं की है । इस कविता-संग्रह के अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि आरांभिक अभियान में कवि स्वयं 'भग्नदूत' रह गये थे ।

2) चिन्ता : सन् १९४१ में प्रकाशित दूसरा काव्य है । इसमें कवि ने नारी पुरुष के आकर्षण को ही मूल कथा के रूप में चित्रित किया है । इसमें पद्य-गद्य का प्रयोग किया गया है । अतः इसे चम्पू काव्य की श्रेणी में रखना अधिक उचित है। चिंता दो खण्डों में विभक्त हैं । 'विश्व प्रिया' और 'एकायन' । 'विश्वप्रिया' में पुरुष की प्रणयानुभूति का स्वरूप उद्घाटित किया गया है और 'एकायन' में स्त्री की प्रणयनुभूति का । अज्ञेय ने चिन्तन पुरुष और चिन्तन स्त्री के स्वाभाविक और मूलगत मनोभावों को व्यक्त करने की चेष्टा की है, किंतु वे स्वतंत्र सफल हुए हों इसमें संदेह है । उनके 'विश्वप्रिया' खण्ड में अज्ञेय का पुरुष, जो सामान्य की अपेक्षा असामान्य तत्वों से अधिक बना है, प्रच्छन्न रूप से व्यक्त हुआ है । 'एकायन' खण्ड की नारी अवश्य ही अपने सहज और पारम्परिक रूप में स्पष्ट हुई है ।

3) इत्यलम् : सन् १९४६ में प्रकाशित 'इत्यलम्' इनका तीसरा प्रमुख काव्य है । इस विशाल काव्य संकलन के पाँच खण्ड हैं । पहले खण्ड में तो 'भग्नदूत' की अप्राप्य कविताएँ ही संकलित हैं, जब कि अन्य खण्ड हैं - बन्दी स्वप्न, हिय हारिल, वंचना के दुर्ग तथा मिट्टी की ईहा । 'बन्दी स्वप्न' खण्ड की अधिकांश कविताएँ अज्ञेय के बन्दी-जीवन से सम्बद्ध हैं, जिनमें बन्दी जीवन, क्रांति और राष्ट्रीयता के भावों को अभिव्यक्त की गई है । 'हिय-हारिल खण्ड में अधिकांश कविताएँ प्रणय प्रतीकों और व्यक्तिवादी रहस्यवाद के रूप में है । 'वंचना के दुर्ग' खण्ड की कविताओं में प्रयोगों का अधिक्य है और 'मिट्टी की ईहा' खण्ड की कयीताएँ अधिकांशतः रूपकात्मक, प्रतीकात्मक है जिनका मुख्य विषय है आत्म तत्व का चिंतन एवं उन्मेष । इस काव्य संग्रह के अन्त में कवि रहस्व की ओर उन्मुख हो जाते हैं ।

4) हरी धास पर क्षण १.२ : सन् १९४७ में प्रकाशित इस कविता संग्रह में सन् १९४८ से १९४९ तक की कविताएँ संकलित हैं । अज्ञेय जी का यह काव्य 'गीतात्मक कविताओं का संकलन' कह जाता है । इसमें छन्द-तुक से सहित और रहित दोनों प्रकार की कविताएँ हैं । कहीं-कहीं ठेकों का ध्यान भी रखा गया है। प्रायः सभी काव्य कृतियों में से इस संग्रह की कविताएँ उनके प्रौढ़ काव्य व्यक्तित्व की परिचायक मानी जाती हैं । रचनाओं के आधार की दृष्टि से इस संकलन की अधिकांश कविताएँ आत्मान्वेषणमूलक और आत्मबोधमूलक हैं ।

5) बावारी अहेरी : सन् १९५४ में प्रकाशित बावारा अहेरी यद्यपि गीत नहीं, पर गीतात्मक अवश्य है । कवि के शब्दों में इस संग्रह की कविताओं में अनुभूति का सान्द्र-घन बनकर उमड़ पड़ी है । प्रभु वेदना, अहम् और सामाजिक सामयिक सभी प्रकार की चेतनाओं के स्वर इसमें सुने जा सकते हैं । इस संग्रह में भाव और कला की स्पष्टता और सुनिश्चितता के सुनियोजित आयाम उपलब्ध होते हैं । भाषा में भी प्रौढ़ता है अभिव्यक्ति में क्षमता है ।

6) इन्द्रधनु रौंदे हुए : सन् १९५७ में यह प्रकाशित हुआ। यह संकलन अज्ञेय के काव्य की नव्य दिशा का सूचक माना जाता है । इसमें समाज सापेक्ष आत्मपरक अनुभूतियों को प्रमुखतः स्वर एवं स्वरूप मिला है । इसकी अधिकांश कविताओं में अज्ञेय का चिंतन की प्रधानता है । प्रकृति का भी उपयोग कवि ने सत्यान्वेषण के लिए माध्यम के रूप में किया है । इसमें क्षणबादी चिंतन को प्रमुखता प्राप्त है ।

7) अरी ओ करुणा प्रभामय : इसका प्रकाशन सन् १९४९ में हुआ । इसमें संकलित कविताएँ चार खण्डों में विभाजत है । अधिकांश कविताओं में प्रतीकात्मक स्वरूप दिखाई देता है । रहस्यवादी विचारधारा की दृष्टि से इस संग्रह की 'द्वार हीन द्वार' कविता विशेष उल्लेखनीय है । इसमें सत्य की अनंतता का एक संकेत दिया गया है । सत्यान्वेषण कार्य इस कविता संग्रह में हुआ है ।

8) आंगन के पार द्वार : इस काव्य-संग्रह का प्रकाशन सन् १९६९ में हुआ । इस कविता संकलन को साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला । इस संकलन की कविताएँ अतः सलिला, चक्रान्त शिला, असाध्यवीणा नामक तीन शीर्षेकों में विभाजित हैं । रहस्यवाद की इसमें चरम परिणति देखी जा सकती है । अज्ञेय की अब तक की रचनाओं में सर्वाधिक लम्बी रचना है ।

9) कितनी नावों में कितनी बार : इसका प्रकाशन सन् १९६७ में हुआ । इस रचना के लिए अज्ञेयजी को सन् १९७८ में भारतीय ज्ञनपीठ के पुरस्कार से सम्मानित किया गया । यह कविता-संग्रह अज्ञेय की काव्य-यात्रा की महत्वपूर्ण उपलब्धि है । यहाँ भी कवि की कविताओं में पक्व मन, प्रौढ़ चिन्तन, कलात्मक अभिव्यक्ति, उदार मानवताबादी दृष्टि अपनी पूर्ण गरिमा के साथ अभिव्यक्ति, उदार मानवातावादी दृष्टि अपनी पूर्ण गरिमा के साथ अभिव्यक्त हुई है । इसमें सन् १९६२ से १९६६ तक की रचनाएँ संकलित हैं ।

कुलमिलाकर हम यह कह सकते है कि अज्ञेय की कविताओं में आधुनिकता बनी रही । अज्ञेय जी अधुनिक हिन्दी साहित्य की नदी के ऐसे द्वीप थे जिसके आकर्षण से आनेवाली पीढियाँ शायद ही उभर पाएँ । अज्ञेय के काव्य में रूपांकन पद्धति तथा प्रेमानुभीति :/

अज्ञेयजी-प्रमुखत: प्रेमानुभूति के समर्थ कवि है, और प्रेमानुभीति पर अधिरता रूपांकन उसका एक प्रबल पक्ष है। अज्ञेयजी की अधिकांश कविताओं के अवलोकन से यह परिलक्षित होता है कि उनके व्यक्तित्व नारी-सापेक्षता में ही फलीभूत होता है । वैसे देखा जाय अनके कवियों ने नारी-सौंदर्य से प्रेरित होकर काव्य-जगत को समृद्ध बनाया है । उसी तरह कवि अज्ञेय अपनी प्रेरणा भी नारी-सापेक्षता से ही प्राप्त करते हैं -

जब जब थके हुए हाथों से
छूट लेखनी गिर जाती है
सूखा उर का रस स्रोत यह
तभी देवी क्यों सहसा दिख -
झपक छिप जाता, लेपस्मित मुख -
कविता को सजीव रेखा सी
मानस पट में गिर जाती है ?

इसमें साथ ही यह बात स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमव्यापार में अज्ञेय नैसर्गिकता के पक्षपाती है । 'खग-युगल' के प्रेम-व्यवाहार को देखकर वे द्रवित होकर कहते हैं -

'हाय तुम्हारी नैसर्गिकता ! मानव-नियम निराला है
वह तो अपने ही से अपना प्रणय छिपानेवाला है ।'

सच पूछा जया ऐसी भावनाओं का विकास उसकी उन अनेक नैसर्गिक कविताओं में हुआ है, जिनमें प्रकृति के स्वाभाविक चित्रों में यौन-भावना का सन्निवेश करके कवि के द्वारा उन्हें यौन-प्रतीकों का रूप प्रदान किया गया है -

'घिर गया नभ, उमड़ आये मेघ काले,
भूमि के कम्पित उरोजों पर झुका-सा
विशद, श्वासाहत, चिरातुर
छा गया इन्द्र का नील वक्ष-
वज्र सा, यदि तडित से झुकसा हुआ सा ।
आह मेरा श्वास है उत्तप्त-
धमनियों में उमड़ आयी है लहू की धार
प्यार है अभिशप्त-
तुम कहाँ हो नारी ?'

अज्ञेय आगे देखते हैं कि 'धारयित्री' 'स्नेह से आलित' और बीच कें भक्ति से उत्फुल्ल' तथा बद्ध होकर सत्य सी निर्लज्जानंगी और समर्पित, वासना के पंख-

सी फैली हुई थी। ऐसा लगता है कि कवि का प्रेम अधिकांशतः वासना से ओत-प्रोत है -

'कुछ नही यहाँ भी अन्धकार ही है
काम-रूपिणी वासना का विकार हीं है
यह गुथीला व्योमग्रासी धुआँ - जैसा
आततायी दुस्त-दुर्दम प्यार ही है ।'

कवि की मनः स्थिति कभी कभी ऐसी भी दिखई देती है कि यह वासना से परे हो जाते हैं -

'बाहु मेरे घेर कर तुमको रुके रहे
दो लताओं के प्रलंबित अंकुरों से
प्राण दोनों के
बस झुके रहे
वासना से, याचना से हम परे थे
सहज अनुरागी
नहीं मुझ अहम् की अभिव्यंजना जागी ।'

इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं है कि जहाँ कवि अहम् को तिरहित हो जाने देता है, वहाँ वह काम की बड़ी ही उत्तम अनुभूतियों में मग्न होता हुआ परिलक्षित होता है । ऐसे स्थलों पर विरह की पीड़ा से प्रेम दुगुना होता दिखाई देता है -

'पा न सकने पर तुझे
संसार सूना हो गया है
विरह के आघात से प्रिय
प्यार दूना हो गया है ।'

कवि हमेशा प्रेम में ही चिर-ऐक्य होकर रहना पसंद नहीं करता । जब ऐसी स्थिति आ जाती है तो वह वासनात्मकता से पृथक होकर साधनात्मकता की ओर उन्मुख हो जाता है ।

'प्रेम में चिर ऐक्य कोई मूढ़ होगा तो होगा
विरह की पीड़ा न हो तो प्रेम क्यों जीता रहेगा
जो सदा बाँधे रहे वह एक कारावास होगा
घर वही है जों थके को रैन-भर को हो बसेरा
पूछ लूँ मैं नाम तेरा ।'

यह सत्य है कि प्रेम, विरह की अग्नि में तपकर पवित्र हो जाता है । कवि विरह के अवसरों पर प्रेम को यज्ञ की पवित्र उद्‌दीप्त ज्वाला रूप में देखता है जिसमें वह निखर ने का अनुभूति लाभ कर चुका है-

'वे रोगी होंगे प्रेम जिन्हें अनुभव रस का कटु प्याला है
वे मुद होंगे प्रेम जिन्हें सम्मोहनकारी हाला है
मैंने विदग्ध हो जान लिया, अंतिम रहस्य पहचान लिया
मैंने आहुति बनकर देखा यह प्रेम यज्ञ की ज्वाला है ।

अज्ञेय का अहम् इतना सशक्त और उनके लिए ही इतना अत्याज्य है कि वे प्रेम के साधनात्मक रूप में अपने को बहुत अधिक तल्लीन नहीं कर पाने और नारी को मित्र के रूप में पाने की आशा प्रकट करते हैं । उनकी बौद्धिकता भी इस प्रकार की अभिव्यंजना को प्रभावित करती है । उनका क्षणवाद भी उनकी उस प्रकार की भोग-वृत्ति और प्रकृतवादिता को प्रक्षय देता है । वे याद को पराजय मानने लगते हैं-

'भोर वेला नदी-तट की घन्टियों का नाद
चोट खाकर जग उठा सोया हुआ अवसाद
नहीं मुझकों, नहीं अपने दर्द का अभिमान
मानता हूँ मैं पराजय है तुम्हारी याद ।'

कवि अज्ञेय ने रूपाकंन से सम्बन्धित अनेक रचनाएँ प्रस्तुत की हैं । रूपांकन में उन्होंने परंपरागत उपमानों को छोड़ दिया है, यहाँ तक की छायावादी प्रतीक और उपमानों को भी छोड़ने का प्रयत्न किया है । इन समस्त वर्णनों में उनकी मूल भावना शरीरिक आकर्षण अधिक प्रमुख है । उनका कहना है-

'ये उपमान मैले हो गये हैं
देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कुछ ।'

इस तरह नवीन उपमानों एवं प्रतीकों के सहारे नारी के उस रूप को व्यक्त किया है, जिसके प्रति वह निवेदित, समर्पित और कभी कभी उन्मथित भी हुआ रहा करता है-

'अगर मैं यह कहूँ
विचली घास हो तुम
लहलहाती हवा में कलगी छरहरे बाजरे की
एक प्रतीक
विछली घास है ।'

वस्तुतः 'नख-शिख' रीति-शास्त्र का बड़ा प्रसिद्ध शब्द है । उस रीति-युगीन 'नख-शिख' के अंतर्गत आनेवाले प्रत्येक अंग का उपमान स्थिर हो चुका है । अज्ञेय ने 'नख-शिख' नामक अपनी कविता में परंपरागत उपमानों को यदि कहीं लिया भी है तो संदर्भ तथा सम्बन्ध बदल दिया है -

'तुम्हारे देह
मुझको कनक-चम्पे की कली है
दूर ही से
स्मरण में भी गन्ध देती है ।
(रूप स्पर्शातीत वह जिसकी लुनाई
कुहासे-सी चेतना को मोह ले)
तुम्हारे नैन
पहले भोर की दो ओस-बूँदें है
अछूती ज्योतिमय
भीतर द्रवित
(मानो विधाता के हृदय में जग गई हो
भाप करुणा की अपरिमित ।)'

वस्तुतः रूपांकन की इन पंक्तियों में सांकेतिक नए-नए बिम्बों की कला विशेष रूप से समाविष्ट हुई है और उससे काव्यात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम की शक्ति बढ़ी है। अज्ञेय ने जहाँ अपनी अंतः जनित शरीरी वासना से सौंदर्य बोधगत संयम और चिन्तन को मिला दिया है, निश्चय ही वहाँ बड़ा उदात्त और अकुंठित रूप-चित्र अंकित हुआ है-

देह बल्ली रूप की
एक बार वेड़िझक देख लो
पिंजरा है पर मन इसी से उपजा ।'

निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि अज्ञेय की कविता के प्रारंभिक चरण से लेकर अद्यतन चरणों तक प्रेमानुभूति और रूपांकन की एक अविच्छिन्न धारा प्रवाहित है। यद्यपि आरंभिक काव्य में कवि को प्रेमानुभूति परंपरागत प्रेम भावना के अत्यन्त निकट है, किंतु धीरे-धीरे उसमें कवि उदार दृष्टि का द्वन्द्व है, प्रेम और रूप का द्वन्द्व है, प्रेम और काम-भवना का द्वन्द्व भी है और काव्य के अंतिम चरणों में इन सभी द्वन्द्वों को नैसर्गिकता घोर प्रेम के साधानात्मक रूप से पुष्टि प्राप्त हुई है । इनके साथ उनके काव्य में प्रेमानुभूति के विविध रूप भी दृष्टिगत होते हैं । और निस्सन्देह ही प्रेम का साधनात्मक रूप उनकी अनुभूति का महत्वपूर्ण अंग है । और सबसे बड़ी बात ऐसे काव्यांशों सर्वत्र गम्भीरता, शालीनता और अभिजात्य का समावेश है । इसे हम कवि की अनवरत साधना दृष्टि की परिपक्वता और अनुभवों की सघनता का निश्चित परिणाम कह सकते हैं ।

32.10 सहायक पुस्तकें

1 नयी कविता का इतिहास : डॉ वैजनाथ सिंहल
2 नयी कविता में बिम्ब का वस्तुगत परिप्रेक्ष्य : गोविन्द द्विवेदी
3 नयी कविता की चेतना : जगदीश कुमार
4 नयी कविता की पहचान : रामस्वरूप चतुर्वेदी
5 हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तिया : डॉ शिवकुमार शर्मा

NOTES

इकाई 33

डॉ धर्मवीर भारती, गिरिजा कुमार माथुर और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के काव्य का विवेचन

इकाई की रूप रेखा

33.0 प्रस्तावना

33.1 उद्देश्य

33.2 डॉ धर्मवीर भारती

33.2.1 भारती की कृतियाँ :

33.3 गिरिजा कुमार माथुर

33.4 सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

33.5 बोध प्रश्न

33.6 नमूने का उत्तर

33.7 सहायक पुस्तकें

33.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई में डॉ धर्मवीर भारती, गिरिजा कुमार माथुर और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के काव्य का विवेचन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- धर्मवीर भारती की काव्य कला से अवगंत हो जाएँगे।
- गिरिजा कुमार माथुर की कविताओं का विश्लेषण कर सकेंगे।
- सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के काव्य जगत से परिचित हो जाएँगे।
- उपरोक्त तीनों कवियों की काव्य शैली को पहचान सकेंगे।

33.1 प्रस्तावना

हिन्दी नयी कविता के विकास में डॉ धर्मवीर भारती, गिरिजा कुमार माथुर और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का योगदान अमूल्य है। उनकी कविताओं को पढ़े बिना नया कविता का विश्लेषण हो नही सकता। इसलिए उनका विवेचन वांचनीय है।

33.2 डॉ धर्मवीर भारती

डॉ धर्मवीर भारती का स्थान स्वातंत्र्योतर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में विशेष महत्वपूर्ण हैं । उन्होंने गद्य और पद्य-साहित्य की विभिन्न विधाओं के क्षेत्र में अपनी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है । डॉ धर्मवीर भारती का जन्म २५ दिसंबर १९२६ को इलाहाबाद में हुआ, और वहीं पर उनकी शिक्षा भी हुई है। उन्होंने १९४७ में एम. ए. (हिन्दी) परीक्षा उत्तीर्ण की है । इलाहाबाद विश्वविद्यालय की ओर से उन्हें सर्वाधिक अध्ययन शील विद्यर्थी होने के उपलब्ध में 'चिंतामणी घोष' नामक स्वर्ण पदक प्रदान किया गया । उन्होंने सन् १९६० से 'धर्मयुग' पत्रिका का सम्पदन किया है ।

धर्मवीर भारती 'तार-सप्तक' के कवियों में अपना प्रमुख स्थान रखते हैं । कविता को नया परिवेश देने की इनमें अपूर्व क्षमता रही । इन्होंने 'कनुप्रिया' नामक काव्य लिखकर नयी कविता को प्रबन्धात्मकता प्रदान की तथा सिद्धकर दिया कि नयी कविता में आस्थावादी स्वर की विद्यमानता है। इनके द्वारा इस परम्परा में लिखी गई अन्य रचनाओं में 'अंधायुग' 'सात गीत वर्ष' आदि कृतियाँ उल्लेखनीय हैं ।

भारती के संदर्भ में कहा गया है कि - भारती के काव्य एक बहुत बड़ी विशेषता है - उसकी मूर्तता और पारगत, जो उनके परवर्ती गम्भीर और चिंतन-संबधित काव्यों मे भी लक्षित होती है । 'सात गीत वर्ष' की कविताओं में कवि की रोमानी भावुकता ने यथार्थ की गहराई पाली है, बहुत-सी कविताएँ यहाँ भी प्रेम मूलक हैं. किंतु यहाँ प्रेम के बहुत सूक्ष्म संक्रान्त अनुभवों को उभारा गया है ।

मानवाय मूल्यों की प्रतिष्ठा की दृष्टि से सर्वाधिक निष्कुण्ठ व्यक्तित्व र्मवीर भारती का रहा है । उनमें कहीं भी मूल्यहीनता या विसंगतियों में फँसकर लझाव दृष्टिगत नहीं होता । इस प्रकार वे अज्ञेय और माथुर तथा मुक्तिबोध से बेहतर कवि प्रमाणित होते हैं । वे आस्था मर्यादा, व्यक्ति-स्वातंत्र्य की खोज के लिए अनास्था, पराजय, विकृतियों अथवा कुरुपताओं से पलयान को अपेक्षा उनमें से गुजरना आवश्यक समझते हैं । उनका मत है, कुण्ठा निराशा, रक्तपात, प्रतिबोध, विकृति, कुरुपता, अन्धापन इनसे हिच-किचाना कया ? इन्हीं में तो सत्य के दुर्लभ कण छिपे हुए हैं तो उनके लिए न निडर घंसू ।" जीवन की इन

कुत्साओं में घंसकर कवि को सत्य के जो कण उपलब्ध होते हैं, उन्हें वह सामाजिक दायित्व की भावना के अधीन सब में बांट कर ही अपनी व्यष्टि की सार्थकता को प्रतिष्ठित करना चाहता है ।

भारती के कवि का अनेक विध व्यक्तित्व जीवन और जीवन मूल्यों के प्रति निष्ठावान होने के कारण एकान्वित है। उनके व्यक्तित्व में लोकानुभूति की सहजता है तो नगर जीवन के तीखे-तलख संदर्भों से उभरी जटिल संवेदना भी स्वच्छन्द कल्पना की रंगीनी है तो पौराणिक प्रसंगों को नये जीवन-संदर्भों और अभिप्रायों से संयुक्त करनेवाली बुद्धि शासित कल्पना का सन्निवेश भी, परम्परा के जीवन तत्वों के प्रति मोह है तो नये युग-बोध के अनुरूप उभरी संवेदना और उसकी संवाहक भाषा के क्षेत्र में नये प्रयोगों के प्रति उत्साह भी । वर्तमान बोध और परंपरा के महत्व का ज्ञान किसी भी कवि के लिये अनिवार्य होता है । परंपरा की शक्ति को पहचानने के कारण ही भारती वर्तमान और भविष्य को परंपरा का ही गुण सापेक्ष रूपान्तरण मानते हैं ।

इसी आधार पर वे आज के विज्ञान और विज्ञानवाद से ग्रस्त जीवन और जीवन-संदर्भो को संवेदना के स्तर पर सहज रहा सके हैं । वे अन्य कवियों की भांति न तो कहीं विशुद्ध दार्शनिक हैं और न हीं विशुद्ध वैज्ञनिक । उनकी कविता का दर्शन संदर्भ सापेक्ष्य अनुभवों की देन है । 'अंधों के माहयम से ज्योति की कथा' कहनेवाले वे ही एक मात्र नये कवि हैं । उन्होंने चाहे प्रबन्धात्मक रूप में लिखा है अथवा फुटकर रूप में, उनका कवि संदर्भविहीन कहीं भी नहीं रहा है।

धर्मवीर भारती के कृतित्व में कुछ कविताएँ प्रकृतिपरक हैं । उन कविताओं में कवि किसी समस्या का स्पर्श न करके प्रकृति को गहन आत्मीय भाव से देखता है । 'सात गीत वर्ष' संग्रह में 'नवम्बर की दोपहर' 'फागुन के दिन की एक अनुभूति', 'मेघ दुपहरी', 'कस्बे की शाम इत्यदि कितनी ही ऐसी प्रकृति परक कविताएँ संकलित हैं ।

भारती अद्‌भुत प्रतिभा संपन्न कवि हैं । उन्होंने समग्रजीवन की ययार्थ एवं जीवन्त अनुभूतियों को अत्यंत कौशल के साथ पकड़ा है । भारती में मूल्यों की दृष्टि से मंगल-विधायिनी सार्वभौम चेतना और जीवन को सद्‌गति प्रदान करनेवाले मर्यादायुक्त आचरण, नूतन सृजन और शिवमय तत्व स्थल-स्थल पर दिखाई पड़ते हैं ।

33.2.1 भारती की कृतियाँ

दूसरा सप्तक की कविताएँ : इसमें १२ कविताएँ संकलित हैं, जिनमें से अधिकांश कविताएँ उनके 'ठंडा-लोह' संकलन की ही हैं । 'कवि और कल्पना' 'एक फैंटेसी', 'चुम्बन', 'जाड़े की शाम' आदि इनमें प्रमुख हैं ।

सात गीत वर्ष : इसमें संकलित कविताएँ, वर्ण्य विषय की दृष्टि से 'ठंडा-लोह' की कविताओं से मिलती-जुलती हैं । प्रेम, प्रकृति और व्यक्ति सम्बन्धी भावनाएँ इसपें निहित हैं । इनमें बृहन्नला और बाणभट्ट आदि है ।

कनुप्रिया : इसमें कवि का उद्धेश्य राधा की रोमाण्टिक दृष्टि के माध्यम से युद्ध के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न करना है । यह भारती की बहु चर्चित काव्य-कृति है । कनुप्रिया में पूर्वराग, मंजरी-परिणय, सृष्टि-संकल्प और केलि-सखी के अंतर्गत प्रणय के विविध आयामों को प्रतीकात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया गया है ।

अंधायुग : भारती की मौलिक कृति है । इसमें समस्त मानवता के प्रति भारती की आस्था 'कृष्ण' के माध्यम से व्यक्त हुई है । अंधायुग के श्री कृष्ण मर्यादा तथा दायित्व के प्रतीक हैं । भारती ने इस पात्र को सार्वभौम सत्ता का मंगल विधायक रूप प्रदान किया है । इसमें भारती ने वर्तमान की विभीषिकाओं और मूल्यहीनता के कारणों को बहुत गहराई से समझकर आस्था, विश्वास और मानवीयता की खोज केलिए मर्यादा, अनासक्त कर्म, विवेक और सृजन आदि मानवीय मूल्यों के ग्रहण को अनिवार्य और एकमात्र आधार माना है ।

33.3 गिरिजा कुमार माथुर

गिरिजा कुमार माथुर के कवि-व्यक्तित्व का निर्माण छायावादी-रहस्यमय वायव्यता से रहित और जीवन की सुखदुखात्मक अनुभूतियों से युक्त 'गीतकार', छायावादी वैयक्तिकता को हृदय की अपेक्षा बुद्धि के धरातल पर स्वीकार करनेवाले प्रयोगशील और सामाजिक विषमता तथा युगीन विसंगतियों के प्रति जागरूक 'नये कवि' से मिलकर बना है । उन्होंने वर्तमान मानव, मानव-मूल्यों और स्थितियों पर विचार किया है । वर्तमान मानव-मूल्यों और परिस्थितियों के सम्बन्ध में वे लिखते हैं - 'आदमी पहिचान में नहीं आता कि यह नव बर्बर अगती है या सामग्री । चरम संक्रमण की पछाड़ में उसका पिछला सांस्कृतिक रूप टूट-

फूटकर टुकड़े हो गया है । मूल्यगत प्रतीभा की देह ठेढ़ी-मेढ़ी विकलांग हो गयी है । मर्यादाविहीनता की स्थिति में वह अवशिष्ट के अतिंम उन्मत्त भोग में रत है। आगम के आते हुए एकदम नये अनोखे चेहरे को देखकर वह एकदम भयभीत है । ऐसा कवि जो युग की इस मूल्यहीनता को समझता है, वह निश्चय ही इन विद्रूपस्थितियों से उभरने का प्रयास करेगा। कवि का विश्वास भी है कि संक्रांतियों में डूबी दुनिया के अन्तर्विरोधाभासों के बीच नयी संवेदना के उदय की यह संधि-वेला है । नयी संवेदना के प्रति विश्वास का यह भाव कवि की मानव-भविष्य में आस्था का परिचायक है । माथुर ने मूल्यों की प्रतिष्टा के उपक्रम में पौराणिक प्रसंगों को नये जीवन-संदर्भों से जोड़ने का प्रयास भी किया है । नये वैज्ञानिक अविष्कारों के प्रति उनकी तुलना में किसी भी अन्य कवि को तत्पर नहीं कहा जा सकता। 'विज्ञान के नगे अविष्कार और उनकी संभावनाएं उस नये कवि की काव्य-चेतना में ढलने लगी-अणुयुग के वैज्ञानिक चमत्कारों को, अन्तरिक्ष विजय की नयी संभावनाओं को और उनके प्रकाश में मानवता के भविष्य की कल्पनाओं को साकार करने के लिए कवि ने 'पृथ्वी-कल्प' के रूप में साहसिक प्रयास किया है ।' लेकिन, माथुर का वैज्ञानिकता के प्रति यह मोह उनकी अनुभूति पर हावी रहा है और बहुत बार उनकी कविता वैज्ञानिक की सिद्धांतावली भी प्रतीत होने लगती है । वस्तुगत विरोधाबास तब दिखाई देता है जब कवि की वैज्ञानिक चेतना एकदम रोमाण्टिक हो उठती है ना मध्यवर्ग की हालत पर ज़ोर-ज़ोर आँसू बहाने लगती है । इस प्रकार माथुर की काव्य-चेतना के स्पष्ट तौर पर नितान्त बौद्धिक और नितान्त भावुक-ये दो स्तर दिखाई पड़ते हैं ।

माथुर की मध्यवर्ग या निम्नवर्ग के प्रति सहानुभूति को उनके रोमाण्टिक कवि का ही एक रूप कहा जा सकता है। 'इस तरह उहोंने निम्न मध्यवर्गीय जनता को अपनी सहानुभूति प्रदान करके वस्तुतः अपनी भावुकता की प्रवृत्ति को संतुष्ट किया है ।' लेकिन, इस प्रकार की कल्याण कामना के साथ रूमानी भावना के मेल को कवि की निजी विशेषता भी कहा जायेगा।

सर्वप्रथम यह देखना आवश्यक और अपेक्षित रहेगा कि माथुर का कवि कहाँ यथार्थ-चेतना तथा कहा-कहा वर्तमान युग-बोध की विसंगतियों के प्रति कोरा तथ्यात्मक वर्णन-कर्त्ता भर रहा है ? क्या कवि का ऐसा कृतित्व मूल्यवान् कहा जा सकता है ? क्या उसमें मानव और मानव-जीवन के प्रति आस्था का भाव है?

इस दृष्टि से हम सर्वप्रथम 'शिलापंख चमकीले' के प्रतीकार्थ की समीक्षा करते हैं । प्रस्तुत काव्य-शीर्षक कवि की मूल्य-चेतना का परिचायक प्रतीक है । लेकिन, इस प्रतीक की व्याख्या करते हुए कवि ने स्वयं मानव भविष्य के प्रति कुछ अनास्था, अविश्वास और पराजय की बातें की हैं। 'शिलाओं की कठोरता, कालिमा, गहनता, चमक और विराटता आदि विशेषताओं को उभारकर कवि जैसे किसी व्यापक दीप्त और गहन आन्तरिक सत्य का व्यंजक बनाना चाहता है, पर जब वह कहता है 'कोई सार्वजनिक सत्य अब नहीं रह गया है और काली शिलाएं अब चमक कर गिर रही है तो लगता है वह प्रतीकार्थ की गरिमा को स्वयं ठेस दे रहा है ।' 'जिस दिन विश्वास, स्वप्न, प्यार तथा तप भ्रष्ट-यन्त्र की भांति विफल हो जायेंगे और चांद आबनूस बन जायेगा तथा परिया स्याह शिलाएं वर्तमान आहत और भविष्य अंधकारमय हो जायेगा, उसे कोई भी व्यक्ति मानवता में विश्वास का नाम नहीं दे सकता । यहाँ कवि का स्वर घोर अनास्थावादी का स्वर है । यही नहीं, कवि की स्पष्ट स्वीकारोक्ति है कि वह आणविक संस्कृति से शीघ्र भविष्य में मानवता के संपूर्ण विनाश की शंका से आशंकित है -

'सभ्यता, मनुजता' संस्कृति की इतिहास राख
नभ के खोखल में उल्का बन खो जायेगी ।'

इस सबके प्रति सब लोग आशंकित हैं । कवि की आशंका कोई बहुत बड़े चिन्तक की आशंका प्रमाणित नहीं होती । यह सब संभावित तो है, लेकिन कवि को तो इससे उबरने का मार्ग बताना चाहिए था । इसके विपरीत कवि को जीवन 'क्रांतिकमरीज' के रूप में दिखाई पड़ता है । उसकी दृष्टि में 'जीवन अपाहिज है, रोगी असाध्य बहुत साल से पलंग पर है।' इस प्रकार के कथन मूल्यों की दृष्टि से तो बेमानी हैं ही, इन्हें कविता की दृष्टि से भी सही नहीं कहा जा सकता । यह जीवन के प्रति अविश्वास और निराशा की सूचना है और पलायनवाद को इससे प्रश्रय मिलता है । यदि जीवन वास्तव में रुग्ण है तो हमें चाहिए कि हम उसका उपचार करें न कि उसे असाध्य मान लें । यदि जीवन के प्रति ही इतनी कटुता से हम भर उठेंगे तो शेष हमारे पास क्या बच रहेगा ।

गिरिजाकुमार माथुर ने भी कथ्यहीन की रौ में बहकर कुछ कविताएँ लिखी हैं । पाठक के लिऐ सारी कविता पढ़कर भी कोई ऐसा निर्णय देना असंभव है

कि 'कवि कविता में कया कहना चाहता है ।' इस प्रकार का कृतित्व नयी कविता में बहुत मात्रा में मिलता है । उदाहरण के लिऐ निम्नलिखित उद्धरणों को लिया जा सकता है :

'यह झकाझक रात
चांदनी उजली कि सूई में पिरो लो ताग
चांदनी को दिन समझकर बोलते हैं काग
हो रही ताज़ो सफेदी नये चूने से ।'

ऐसी कितनी ही कविताएँ देखी जा सकती हैं (जिनमें केवल लफ्फज़ी है) जो कथ्य की दृष्टि से सारहीन हैं । इस प्रकार की कविताएँ संग्रहों में केवल पृष्ठ संख्या बढ़ाती हैं ।

माथुर कवि इतिहास और परंपरा के महत्व को समझने की ओर उद्यत है। 'दियाधरी' में वे अपनी इस जागरूकता को व्यक्त करते हुए लिखते हैं, 'इतिहास का सत्य किस प्रकार टूटकर कल्पना और भ्रम बनता है और किस प्रकार उसे भविष्य रचना की ओर उन्मुख किया जा सकता है, यही प्रस्तुत कविता का कथ्य है ।'

इसीलिए कवि दियाधरी के दीप में इतिहास रूपी विभूति की आत्मा को 'मोती जैसा युग लाने को फिर समाज की सीप में' जलते हुए देखता है । परंपरा के इस अवलम्ब को पाकर कवि वर्तमान की सभी विभीषिकाओं में से गुज़रकर भी जीने की प्रबल इच्छा से भर उठता है । 'लौह मकड़ी का जाल', 'शिलापंख चमकीले संग्रह की जीजीविष बोध से युक्त एक सशक्त रचना है । लौह मकड़ी का जाल वर्तमान विभीषिकाओं और कुत्साओं के व्यापक जाल का प्रतीक है जिसमें वर्तमान मनुष्य स्वयं को घिरा हुआ अनुभव करता है। 'इन आलोंक उलझे घोर चक्करदार तारों से मुझे निकाल लो', में कवि ने अपनी दृष्टि के माध्यम से समष्टि की पीड़ा और जिजीविषा की ओर संकेत किया है ।

कवि माथुर ने युगीन परिस्थितियों पर भी दृष्टि डाली है । व्यक्ति की दासता, दीनता, शोषण तथा सभी प्रकार सामाजिक विषमताओं और तज्जन्य दुष्प्रभावों के लिए परिस्थितियों को दोषी ठहराया है । यदि परिस्थितियाँ सभी के लिए अनुकूल हो जाती तो, 'कोयला अभागा बन सकता या हीरा ।' इस

प्रकार कवि मानव के समता के महत्व को प्रतिष्ठित करता है । वह मानव मात्र में समान शक्ति और चिन्तन होने के प्रति विश्वस्त है ।

माथुर ने युगीन समस्याओं में से जिनसे आज क. आदमी घिरा हुआ अनुभव करता है, बहुत सी समस्याओं को व्यक्ति की न-समझी और बेवक़ूफी का परिणाम माना है । वर्तमान मनुष्य हर काम में बेमतलब ही प्रश्न चिह्न लगाता रहता है और मनमाने अर्थ गढ़कर स्वयं तर्क, फलसफे का रंगीन तमाशा खड़ा कर लेता है । विराट् विश्व को देखते हुये उसका अनुपात कुछ भी नहीं है, लेकिन वह फिर भी, 'ईर्ष्या, अहं, स्वार्थ, घृणा और अविश्वास की असंख्य दीवारें उठाता है और अपने को दूजे का स्वामी बताता है देशों की कौन कहे, एक कमरे में दो दुनिया रचाता है । यह व्यक्ति की क्षुद्रता की प्रतिष्ठा नहीं वरन् उसको क्षुद्र बनानेवाली उसकी प्रवृत्तियों पर प्रहार है । कवि का अभिप्राय यही है कि मनुष्य जितना अधिक सामाजिक बनने का प्रयास करेगा, उतनी शीघ्र उसकी अनेक कुँठाएं और ओढी हुई विपदाएं समाप्त हो जायेगी ।

गिरिजाकुमार माथुर ने पारम्परिक पौराणिक संदर्भों को युगीन परिप्रेक्ष्य में बहन किया है । उसकी 'इन्दुमती' और 'धरादीप' दोनों कविताएं पौराणिक संदर्भयुक्त काव्यरूपक है। यद्यपि कवि पौराणिकता के इस अधिग्रहण द्वारा कुछ भी विशिष्ट मूल्यवान् नहीं दे सका है तो भी उसका प्रयास मूल्यवान् की उपलब्धि का ही रहा है । कवि कुत्साओं से पलायन की उपेक्षा उन्हें नव-संस्कृति के उदय का शुभ लक्षण मानता है -

'धरती पर घिरती
जब कभी अमावस काली
तभी नयी संस्कृति की
उठती है दीपाली ।' (धूप के धान)

यदि हम संघर्ष द्वारा आयी आपादाओं और मूल्यहीनता से नहीं जूझेंगे तो हम किस प्रकार नयी दीवाली की आशा कर सकते हैं । कर्मण्यता मानव का धर्म है । इस के लिए कटिबद्ध रहने के वास्ते व्यक्ति के अंतर को माँजना होना होगा उसके विवेक को दहकता सोना और संक्रांति के अनिश्चय से उसकी दृष्टि की धुंधली होने से बचे रहना होगा । ऐसे ही व्यक्तियों में सुखद भविष्य के निर्माण के प्रति कवि की आस्था है ।

गिरिजा कुमार माथुर की मूल्य-चेतना का उत्कृष्टतम रूप उनके मानव-जीवन में अगाध विश्वास में प्रकट होता है जब कवि 'पृथ्वी कल्प' में कह उठता है 'धरती की सुन्दरतम सृष्टि इंसान है मानव की पशुता ही जिंदा शैतान है उस शैतान पर जीत इन्सान की पृथ्वी कथा है इतिहास की कहानी है। 'जब इतिहास की कहानी शैतान पर इन्सानी विजय की कहानी है, तो वर्तमान कितना ही शैतानी और मूल्यहीन क्यों न हो जाये, अन्ततः विजय मानव और मानवीय मूल्यों की ही होगी।

कुल मिलाकर यह कहाना उचित होगा कि गिरिजाकुमार माथुर ने अनुभूतियों में लोक चेतना के तनाव, संघर्ष, व कुण्ठाओं को जीकर अभिव्यक्ति दी है ।

33.4 सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

नये कवि के रूप में सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का दावा है कि वे शायद कविता न लिखते यदि उनके अनुसार 'प्रतिष्ठित कवियों में एक भी ऐसा होता, जिसकी कविताओं में कवि का एक व्यापक जीवन-दर्शन मिलता-एक भी आलोचक ऐसा होता जिसने प्रयोगवाद या नयी कविता के बारे में एक भी समझदारी की बात कही होती-एक भी जागरूक पाठक ऐसा होता जिसने हिन्दी की वर्तमान रचनाओं पर घोर असन्तोष न व्यक्त किया होता। ' इतने बड़े दावे को देखकर सर्वेश्वर से सहज ही यह आशा की जा सकती है कि उनका जीवन-दर्शन बहुत व्यापक होगा और मूल्यान्वेषण की दृष्टि से वे बहुत समर्थ कवि होंगे। उनसे यह आशा करना भी गलत नहीं हो सकता कि उन्होंने सभी नये कवियों की तुलना में युगीन जटिलतओं को सर्वाधिक गहनता से समझा होगा और परंपरा एवं इतिहास के साक्ष्यों द्वारा वर्तमान विकृतियों का-परिष्कार किया होगा । इसके विपरीत वास्तविकता यह है कि सर्वेश्वर ने उपर्युक्त वक्तव्य द्वारा अपनी स्थिति को उपहासास्पद बना लिया है । उनके वक्तव्य को पढ़कर पाठक एकबार तो चौंक जाता है और उनके कवि से स्वाभाविक तौर पर युगस्त्रष्टा होने की आशा से जब वह उनका अध्ययन करता है तो देखता है कि न केवल उनका दावा मूल्यों की दृष्टि से थोथा है, वरन् उनका कृतित्व भी बहुत युग-सापेक्ष भी नहीं है। तीसरा सप्तक ' में उन्हें संकलित करनेवाले अज्ञेय 'काठ की घंटियां' की भूमिका में उन्हें समसामयिक तक मानने से इन्कार कर देते हैं। अज्ञेय के अनुसार, 'सर्वेश्वर की

अब तक की रचनाओं के आधार पर यह तो अभी नहीं कहा जा सकता कि सामाजिक यथार्थ पूरी कि सामाजिक यथार्थ उनकी पकड़ में आगे भी नहीं आया और न उन्होंने उसे पकड़ने की कोशिश की है।

सर्वेश्वर युगीन जीवन की जटिलताओं एवं कठोरताओं तथा वैयक्तिक जीवन की यथार्थगत विषमताओं को न झेल सकने के कारण रोमांटिक अवसाद की ओर उन्मुख होते हैं । फ्राइडीय मनोविज्ञान के अनुसार मन की कोमल भावनाएँ जब कठु यथार्थ का साक्षात् करने में असमर्थ होती हैं तो वे प्रायः रोमांटिक अवसाद, अतृप्ति अथवा निराशा में व्यंजित होने लगती हैं। इसी आधार पर सर्वेश्वर यथार्थ से पलायन करके रोमांटिक अनुभूतियों में मानसिक शांति खोजने लगते हैं।

कविता को जीवित करने का संकल्प लेकर चलनेवाले प्रेम के बिना बेसहारा सर्वेश्वर का आक्रोश जब यथार्थ का मुकाबला नहीं कर पाता तो वह विद्रोह का रूप धारण कर लेता है, लेकिन नपुंसक विद्रोह का। हार से खीझकर उनकी आहत दुर्बलता दर्प से शीश उठा लेती हैं और वे मुटिठया भींच लेते हैं तथा उनकी सूखी शिरायें तन जाती हैं। निस्संदेह यह आक्रोश स्वस्थ आक्रोश नहीं कहा जा सकता। इस प्रकार का आक्रोश क्षणिक होता है, उपलब्धि कारी नहीं। वह नासमझी का आक्रोश है, मूल्यहीनता के प्रति विद्रोह नहीं।

सर्वेश्वर में मध्यवर्गीय समाज की समस्यओं के प्रति कुछ रीझना पड है। कहीं-कहीं मध्यवर्गीय समाज के प्रतिनिधि कवि के रूपमें उभरते हुए वे मुक्तिबोध के समकक्ष प्रतीत होते है, लेकिन मुक्तिबोध की भांति वे सामाजिक जीवन में व्यक्तियों के सम्बन्धों, टकरावों, ऊब, अजनबीपन और एकाकीपन को जीवन की गत्यात्मकता के साथ काव्य में नहीं उतार सके हैं। ' सर्वेश्वर का कृतित्व एक निश्चित वातावरण में प्रस्तुत हुआ है, उस विशिष्ट वातावरण के बाहर वे सफल नहीं हो सके हैं। ' उनका यह निश्चित वातावरण उनके अनिश्चित मन की बिखरी अनुभूतियों से निर्मित हुआ है।

सर्वेश्वर में नयी कविता बनाम युगीन अन्तर्वी रोधों पर दृष्टिपात युद्ध की समस्या पर विचार करते समय दिखाई पड़ता है। युद्ध समस्या में अन्तर्निहित और सहजात समस्याओं में सर्वेश्वर ने शान्ति, खाद्य समस्या और सामाजिकता आदि पर भी विचार किया है। उनका मत है कि युद्ध की विभीषिका सभी

प्रकार के ईश्वरीय, आध्यात्मिक अथवा अन्य सांस्कृति मूल्यों के अवमूल्यन के कारण उग्र हुई है । प्रकारान्तर से कवि ईश्वर, आधयात्मिकता, धर्म अथवा सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा में विश्वास प्रकट करता है और वर्तमान संकट से मुक्ति का एकमात्र उपाय प्राचीन मूल्यों के ग्रहण में ही देखता है। इस प्रकार कवि परंपरा पोषक तो दिखाई पड़ता है, लेकिन परम्परा की पूर्ण स्वीकृति से युगीन यथार्थ की उपेक्षा होती है, इस तथ्य पर विचार करता प्रतीत नहीं होता। वास्तविकता तो यह है कि यथावत् परम्परा की अस्वीकार्यता में ही तो नये मूल्यों की खोज का प्रश्न उठा है। सर्वेश्वर पर पाश्चात्य जगत् की विसंगतियों से ऊबी हुई मृत ईश्वर की वापसी वाली चेतना का प्रभाव तो है, लेकिन इस चेतना के निर्माण में वहां के तथाकथित आधुनिक दर्शनों की खोखलेपन की भर्त्सना नहीं है।

युद्ध की विभीषिका से आक्रान्त कवि का मानस, युद्ध को वर्तमान मानव के अस्तित्व के प्रति सबसे बड़ा खतरा मानता है। इसी दृष्टिकोण के कारण उन पर अस्तित्ववाद का प्रभाव माना जाता है, जबकि इसमें उस प्रभाव जैसी कोई बात नहीं है क्योंकि इस खतरे से आज कौन परिचित नहीं है। युद्ध की समस्या पर विचार करते हुए सर्वेश्वर वास्तव में 'अन्धयुग' की भांति कोई विशिष्ट दर्शन प्रस्तुत नहीं कर सके। न तो वे युद्धों को रोकने के उपायों पर विचार कर सके हैं और न ही अंधयुग की भांति मोहान्वता, शोषण और अविवेक से उभरने के लिए मूल्य रूप में आस्था, विश्वास, सामाजिक अथवा विवेक के उन्नायक रूप को प्रस्तुत कर सके हैं। उनका स्वर केवल व्यंग्यात्मक होकर रह गया है और व्यंग्य भी कोई ऐसे ऊँचे दर्जे का नहीं कि समग्र वस्तुस्थिति स्पष्ट हो सके। उन्होंने तथाकथित शांति प्रचारकों पर व्यंग्य किया है जो शांति की आड़ में युद्ध का आह्वान करते हैं।

कवि जनसाधारण को स्वार्थी पुरुषों एवं राष्ट्रों द्वारा आयोजित युद्धों में बलि का बकरा बनने के प्रति सावधान करता है। यदि जन-साधारण इन स्वार्थी पुरुषों के हाथों की कठपुतली न बने तो युद्ध स्वतः ही समाप्त हो जायेंगे। इसलिए कवि चेतावनी देता है 'उनसे बचो जो मुर्दा हाथ गिनकर युग-निर्माण की घोषणा कर रहे हैं । ऐसी कविताओं में ' पीस पेगोड ', ' सिपाहियों का गीत ', ' बेबी टैंक ', इत्यादि उल्लेखनीय हैं। इन सभी कविताओं में युद्ध की समस्या को लिया गया है, लेकिन सतही स्तर पर। लेकिन, सर्वेश्वर इस विश्वास से परिचालित हैं :

'शायद कल मेरे गूँगे स्वरों के सहारे
कोटि-कोटि कंठों की सोयी शक्ति बोल दे '

काश सर्वेश्वर के कवि का यह विश्वास अन्त तक बना रहता और वे कुछ नया खोजने की दिशा में प्रेरित हो सकते। उनका ' कन्फ्जूयन ' उन पर आद्यन्त छाया रहता है। वे मूल्यहीनता की गिरफ्त से मुक्त नहीं हो पाते । उन्हें अनुभव होता है कि वे खाली गिलास से रख दिये गये हैं । 'कभी-कभी चांद उन्हें जेब में पड़ा मिलता है, सूरज को गिलहरी पेड़ पर खा जाती है और उनके लिये दुंनिया प्रायः मटर का दाना बन जाती है। ' यह स्वस्थ चेतना नहीं है ऐसी यत्र-तत्र विखरी उक्तियां कवि का नयी लफ्फजी और बेलुके प्रतीकों के प्रति मोह व्यक्त करती हैं । अभी तक नयी कविता को उन्होंने कुछ भी मूल्यवान नहीं दिया है । उनमें अभी अनर्गल कहने का मोह बना हुआ है । जिस प्रकार कभी-कभी वे यथार्थ को पकड़ने की कोशिश करते हैं, यदि उससे संपृक्त रहकर वे अपने विखराव को सहेज लें तो पाठक को भी उनके इस विश्वास में विश्वास हो सकता है।

'इस निरर्थक आत्मा को भी
एक अर्थ दे लूंगा। '

मूल्यों की दृष्टि से वास्तविकता यही है कि अभी सर्वेश्वर आत्मा को अर्थ दे नहीं सके हैं, वरन् उसकी तैयारी में हैं । यदि वे जागारूक रहे तो भी वे अपने दावे के अनुरूप न सही, तो भी कुछ मूल्ययुक्त कविता की उनके आशा की ज सकती है।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि जीवन की जटिलताओं, एवं विषमताओं से हटकर रोमांटिक की ओर ही सक्सेना जी झुके हुए प्रतीत होते हैं।

33.5 बोध प्रश्न

1 डॉ धर्मवीर भारती,की काव्य कला का परिचय दीजिए।
2 गिरिजा कुमार माथुर के काव्य पर एक निबंध लिखिए।
3 सर्वेश्वर दयाल सक्सेना का काव्य का विवेचन कीजिए।

33.6 नमूने का उत्तर

1 डॉ धर्मवीर भारती,की काव्य कला का परिचय दीजिए।

उत्तर - डॉ धर्मवीर भारती का स्थान स्वातंत्र्योतर हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में विशेष महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने गद्य और पद्य-साहित्य की विभिन्न विधाओं के क्षेत्र में अपनी रचनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया है । डा धर्मवीर भारती का जन्म २५ दिसंबर १६२६ को इलाहाबाद में हुआ, और वहीं पर उनकी शिक्षा भी हुई है। उन्होंने १६४७ में एम. ए. (हिन्दी) परीक्षा उत्तीर्ण की है । इलाहाबाद विश्वविद्यालय की ओर से उन्हें सर्वाधिक अध्ययन शील विद्यर्थी होने के उपलब्ध में 'चिंतामणी घोष' नामक स्वर्ण पदक प्रदान किया गया । उन्होंने सन् १६६० से 'धर्मयुग' पत्रिका का सम्पदन किया है ।

धर्मवीर भारती 'तार-सप्तक के कवियों में अपना प्रमुख स्थान रखते हैं । कविता को नया परिवेश देने की इनमें अपूर्व क्षमता रही । इन्होंने 'कनुप्रिया' नामक काव्य लिखकर नयी कविता को प्रबन्धात्मकता प्रदान की तथा सिद्धकर दिया कि नयी कविता में आस्थावादी स्वर की विद्यमानता है। इनके द्वारा इस परम्परा में लिखी गई अन्य रचनाओं में 'अंधायुग' 'सात गीत वर्ष' आदि कृतियाँ उल्लेखनीय हैं ।

भारती के संदर्भ में कहा गया है कि - भारती के काव्य एक बहुत बड़ी विशेषता है - उसकी मूर्तता और पारगत, जो उनके परवर्ती गम्भीर और चिंतन-संबधित काव्यों मे भी लक्षित होती है । 'सात गीत वर्ष' की कविताओं में कवि की रोमानी भावुकता ने यथार्थ की गहराई पाली है, बहुत-सी कविताएँ यहाँ भी प्रेम मूलक हैं, किंतु यहाँ प्रेम के बहुत सूक्ष्म संक्रान्त अनुभवों को उभारा गया है ।

मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा की दृष्टि से सर्वाधिक निष्कुण्ठ व्यक्तित्व धर्मवीर भारती का रहा है । उनमें कहीं भी मूल्यहीनता या विसंगतियों में फँसकर उलझाव दृष्टिगत नहीं होता । इस प्रकार वे अज्ञेय और माथुर तथा मुक्तिबोध से बेहतर कवि प्रमाणित होते हैं । वे आस्था मर्यादा, व्यक्ति-स्वातंत्र्य की खोज के लिए अनास्था, पराजय, विकृतियों अथवा कुरुपताओं से पलयान की अपेक्षा उनमें से गुजरना आवश्यक समझते हैं । उनका मत है, कुण्ठा निराशा, रक्तपात, प्रतिबोध, विकृति, कुरुपता, अन्धापन इनसे हिच-किचाना कया ? इन्हीं में तो

सत्य के दुर्लभ कण छिपे हुए हैं तो उनके क्यों न निडर घंसू ।" जीवन की इन कुत्साओं में घंसकर कवि को सत्य के जो कण उपलब्ध होते हैं, उन्हें वह सामाजिक दायित्व की भावना के अधीन सब में बांट कर ही अपनी व्यष्टि की सार्थकता को प्रतिष्ठित करना चाहता है ।

भारती के कवि का अनेक विध व्यक्तित्व जीवन और जीवन मूल्यों के प्रति निष्ठावान होने के कारण एकान्वित है। उनके व्यक्तित्व में लोकानुभूति की सहजता है तो नगर जीवन के तीखे-तलख संदर्भों से उभरी जटिल संवेदना भी स्वच्छन्द कल्पना की रंगीनी है तो पौराणिक प्रसंगों को नये जीवन-संदर्भों और अभिप्रायों से संयुक्त करनेवाली बुद्धि शासित कल्पना का सन्निवेश भी, परम्परा के जीवन तत्वों के प्रति मोह है तो नये युग-बोध के अनुरूप उभरी संवेदना और उसकी संवाहक भाषा के क्षेत्र में नये प्रयोगों के प्रति उत्साह भी । वर्तमान बोध और परंपरा के महत्व का ज्ञान किसी भी कवि के लिये अनिवार्य होता है । परंपरा की शक्ति को पहचानने के कारण ही भारती वर्तमान और भविष्य को परंपरा का ही गुण सापेक्ष रूपान्तरण मानते हैं ।

इसी आधार पर वे आज के विज्ञान और विज्ञानवाद से ग्रस्त जीवन और जीवन-संदर्भो को संवेदना के स्तर पर सहज रहा सके हैं । वे अन्य कवियों की भांति न तो कहीं विशुद्ध दार्शनिक हैं और न ही विशुद्ध वैज्ञनिक । उनकी कविता का दर्शन संदर्भ सापेक्ष्य अनुभवों की देन है । 'अंधों के माहयम से ज्योति की कथा' कहनेवाले वे ही एक मात्र नये कवि हैं । उन्होंने चाहे प्रबन्धात्मक रूप में लिखा है अथवा फुटकर रूप में, उनका कवि संदर्भविहीन कहीं भी नहीं रहा है।

धर्मवीर भारती के कृतित्व में कुछ कविताएँ प्रकृतिपरक हैं । उन कविताओं में कवि किसी समस्या का स्पर्श न करके प्रकृति को गहन आत्मीय भाव से देखता है । 'सात गीत वर्ष' संग्रह में 'नवम्बर की दोपहर' 'फागुन के दिन की एक अनुभूति', 'मेघ दुपहरी', 'कस्बे की शाम इत्यदि कितनी ही ऐसी प्रकृति परक कविताएँ संकलित हैं ।

भारती अद्‌भुत प्रतिभा संपन्न कवि हैं । उन्होंने समग्रजीवन की ययार्थ एवं र्जीवन्त अनुभूतियों को अत्यंत कौशल के साथ पकड़ा है । भारती में मूल्यों की दृष्टि से मंगल-विधायिनी सार्वभौम चेतना और जीवन को सद्‌गति प्रदान करनेवाले

मर्यादायुक्त आचरण, नूतन सृजन और शिवमय तत्व स्थल-स्थल पर दिखाई पड़ते हैं ।

भारती की कृतियाँ :

दूसरा सप्तक की कविताएँ : इसमें १२ कविताएँ संकलित हैं, जिनमें से अधिकांश कविताएँ उनके 'ठंडा-लोहा' संकलन की ही हैं । 'कवि और कल्पना' 'एक फैंटेसी', 'चुम्बन', ज... की शाम' आदि इनमें प्रमुख हैं ।

सात गीत व . इसमें संकलित कविताएँ, वर्ण्य विषय की दृष्टि से 'ठंडा-लोहा' की कविताओं से मिलती-जुलती हैं । प्रेम, प्रकृति और व्यक्ति सम्बन्धी भावनाएँ इसमें निहित हैं । इनमें बृहन्नला और बाणभट्ट आदि है ।

कनुप्रिया : इसमें कवि का उद्धेश्य राधा की रोमाण्टिक दृष्टि के माध्यम से युद्ध के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न करना है । यह भारती की बहु चर्चित काव्य-कृति है । कनुप्रिया में पूर्वराग, मंजरी-परिणय, सृष्टि-संकल्प और केलि-सखी के अंतर्गत प्रणय के विविध आयामों को प्रतीकात्मक ढंग से अभिव्यक्त किया गया है ।

अंधायुग : भारती की मौलिक कृति है । इसमें समस्त मानवता के प्रति भारती की आस्था 'कृष्ण' के माध्यम से व्यक्त हुई है । अंधायुग के श्री कृष्ण मर्यादा तथा दायित्व के प्रतीक हैं । भारती ने इस पात्र को सार्वभौम सत्ता का मंगल विधायक रूप प्रदान किया है । इसमें भारती ने वर्तमान की विभीषिकाओं और मूल्यहीनता के कारणों को बहुत गहराई से समझकर आस्था, विश्वास और मानवीयता की खोज केलिए मर्यादा, अनासक्त कर्म, विवेक और सृजन आदि मानवीय मूल्यों के ग्रहण को अनिवार्य और एकमात्र आधार माना है ।

33.7 सहायक पुस्तकें

1 नयी कविता का इतिहास : डॉ वैजनाथ सिंहल

2 नयी कविता में बिम्ब का वस्तुगत परिप्रेक्ष्य : गोविन्द द्विवेदी

3 नयी कविता की चेतना : जगदीश कुमार

4 नयी कविता की पहचान : रामस्वरूप चतुर्वेदी

5 हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तिया : डॉ शिवकुमार शर्मा

NOTES

ಆದೇಶ ಸಂಖ್ಯೆ : ಕರಾಮುವಿ/ಅಸಾವಿ/4–060/2013–2014 ದಿನಾಂಕ : 24–09–2013
ಒಳಪುಟ : 60 GSM MPM ವೈಟ್ ಪ್ರಿಂಟಿಂಗ್ ಪೇಪರ್ ಮತ್ತು ಹೊರಪುಟ: 170 GSM ಆರ್ಟ್‌ಕಾರ್ಡ್
ಮುದ್ರಕರು : ಅಭಿಮಾನಿ ಪಬ್ಲಿಕೇಷನ್ ಲಿ., ಬೆಂಗಳೂರು–10 ಪ್ರತಿಗಳು : 1200

Karnataka State Open University

Manasagangotri Mysore - 570 006

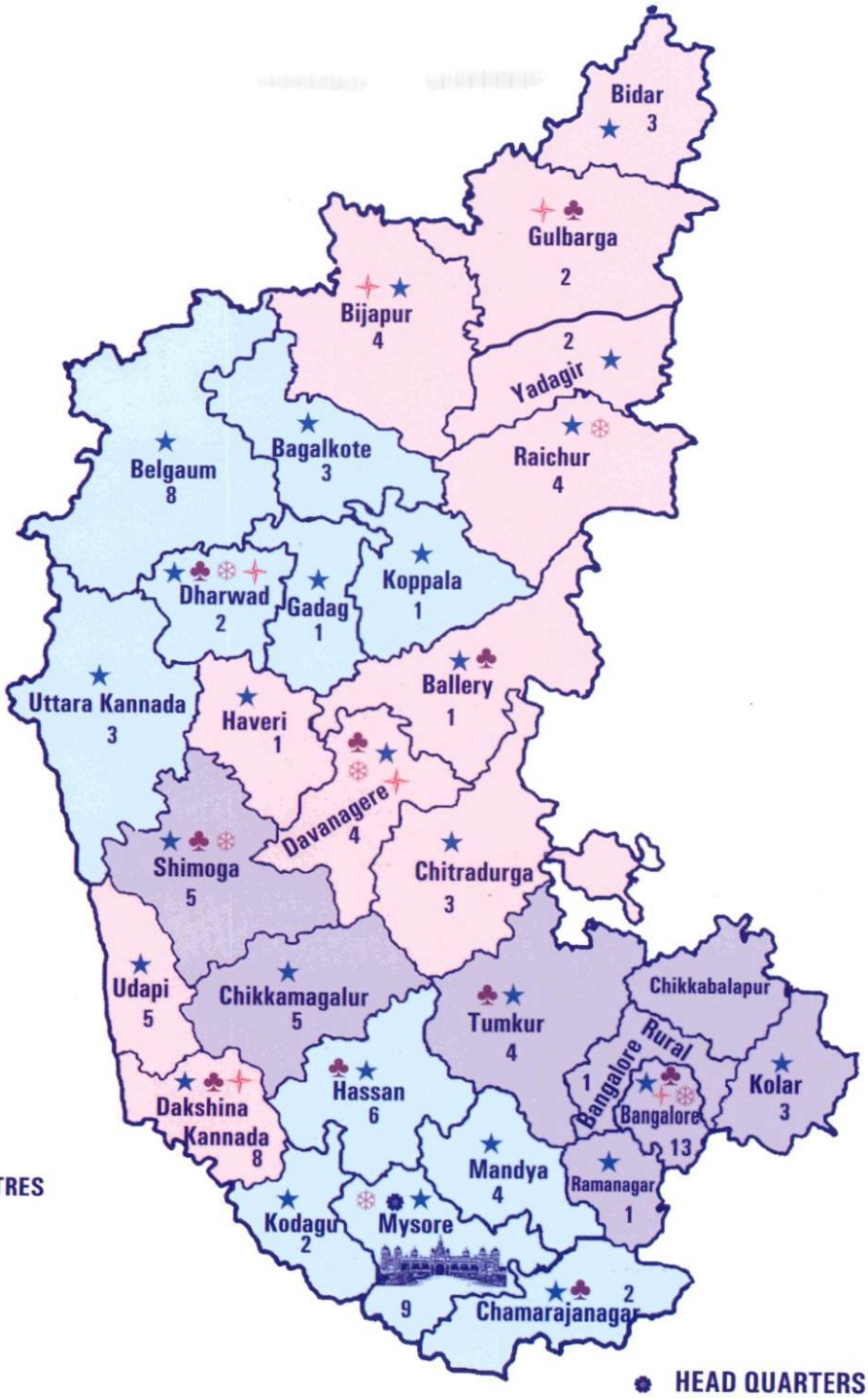

REGIONAL CENTRES

Bangalore
Davanagere
Gulbarga
Dharwad
Shimoga
Mangalore
Tumkur
Hassan
Chamarajanagar
Bellary

HEAD QUARTERS

Total Study Centres : 111

Regional Centres : 10

B.Ed Study Centres : 10

M.Ed Study Centres : 08

Karnataka State Open University

Manasagangothri, Mysore - 570 006.

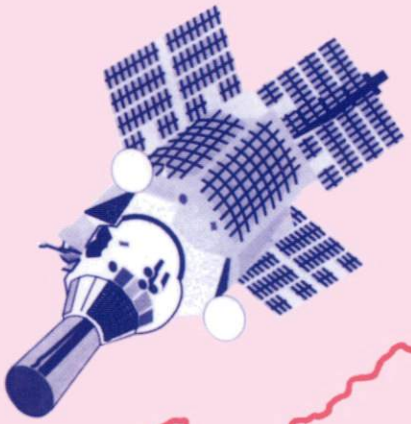

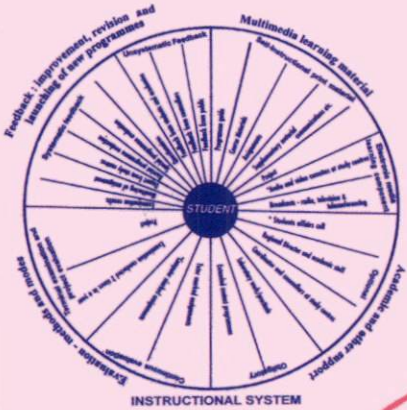

INSTRUCTIONAL SYSTEM

INSTRUCTIONAL SYSTEM